रेशमी टाई

[पाँच एकांकी नाटकों का संग्रह]

रामकुमार वर्मा
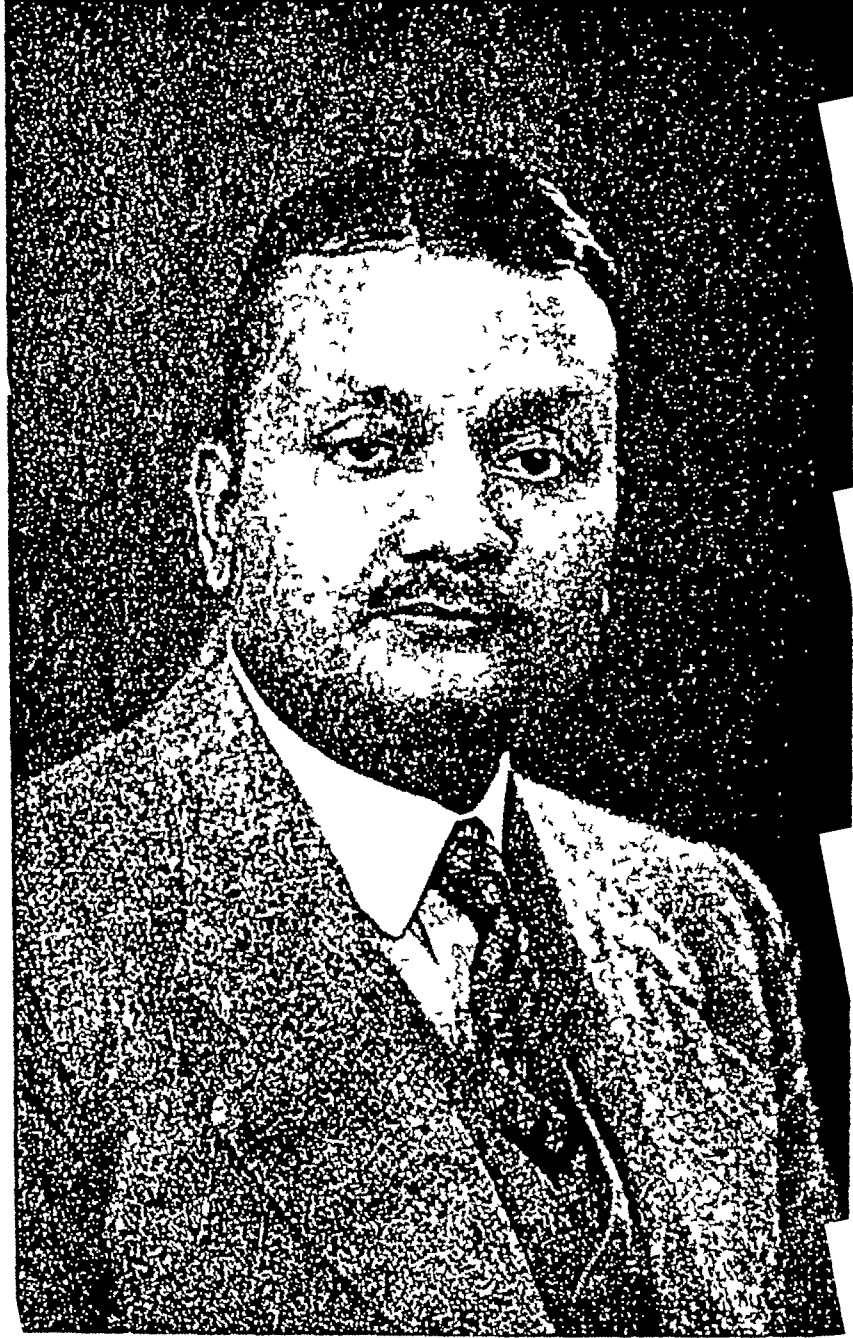
श्री अमरनाथ झा

मेरा अनुभव

नाटको के संबन्ध में बहुत नही कहा जा सकता। ३५ वर्ष जीवन के हृदय तक पहुँचने के लिये पर्याप्त नही है। और जब हमें जीवन के चिह्न किसी अशिक्षित गाँव में बडी कौतूहल-जनक स्थिति मे मिलते है—एक किशोरी की मृत्यु पर पिता उसके मुख से वस्त्र हटा कर उसे देखना नही चाहता, तब हम सोचते है कि जीवन की परिस्थितियो के ज्ञान के लिए नाटककार को अपनी यात्रा मे अनेक वर्षों के संबल की आवश्यकता है।

नाटककार जीवन का अभिन्न सखा है। वर्षों के साहचर्य से उसे जीवन की प्रत्येक मुस्कान और प्रत्येक उच्छ्वास की गहराई का ज्ञान है। प्रेम और घृणा में हृदय के स्पन्दन की गति से उसके कान परिचित है। वह जीवन की बहुत सी 'घूसर-भुजङ्ग-सी' पगडंडियो पर चल चुका है। उसे शायद ठोकरे भी लगी है। मेरी कल्पना मे नाटककार मञ्च पर खड़ा है। विनोद में अपनी मुट्ठी बाँध कर पूछता है—क्या है इसमे? कोई कहता है, पैसा। कोई कहता है, खाली। आप कह दीजिए—दो आँसू, एक हँसी, आधा चुम्बन। नाटककार लज्जित हो कर कहेगा—ठीक है।

साहित्य का अध्ययन करने की अपेक्षा हमें जीवन का अध्ययन करने की आवश्यकता है। उसी में हमें मौलिकता के दर्शन होंगे। साहित्य के ग्रन्थ तो लेखकों के व्यक्तिगत दृष्टिकोणों से ही बने हुए हैं। हमारे सामने दस पुस्तकों के दस दृष्टिकोण यदि उपस्थित ही कर दिए गए तो हमें जीवन का कितना भाग प्राप्त होगा? हम भी उन्हीं दस दृष्टिकोणों से चोर की तरह कुछ लेकर ग्यारहवाँ प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे। तब हम अपने जीवन का प्रथम ज्ञान क्यों न अर्जित करें? पुरुष और स्त्री के मनोविज्ञान में पैठ कर वास्तविक मनुष्यत्व की रूपरेखा का निर्माण क्यों न करें?

प्रेमी जब व्यङ्ग करने लगता है तब उसके प्रेम का आधार किस चीज़ पर रहता है?

अविवाहिता की पवित्र स्वतन्त्रता उसके लिए कलङ्क है, विवाहिता की अपवित्र स्वतन्त्रता गौरव है।

इसे कैसे पहिचानेंगे कि किस स्त्री की लज्जा में शोभा है, और किसकी लज्जा में आडम्बर!

गृह के उत्तरदायित्व की भावना शिक्षित स्त्रियों में अधिक होती है या अशिक्षित स्त्रियों में!

अपनी स्त्री की अपेक्षा अन्य स्त्री की भंगिमा में क्या आकर्षण है?

कालेज का एक रसिक युवक जिस लड़की से प्रेम करना चाहता है, क्या उससे शादी करने के लिए भी तैयार होगा?

एक दार्शनिक अच्छा पति क्यों नहीं हो सकता?

लगान का प्रबन्ध करने में किसान अपनी पत्नी को पत्नी क्यों नहीं रहने देता ?

प्रेम में निराश होने पर कब प्रेमी आत्म-हत्या करता है और कब चरित्र-हीन होने लगता है ?

क्या ईश्वर से प्रेम करने के पूर्व स्त्री से प्रेम करना आवश्यक है ?

विपत्ति किस व्यक्ति को उठाती है और किस व्यक्ति को गिराती है ?

आदि बहुत से प्रश्न है जिनसे जीवन के मूल रूप को अध्ययन करने की सामग्री मिलती है। हमारे इस अध्ययन मे वास्तविक वस्तुस्थिति का स्पन्दन होगा और उसमे हम मानव की आवाज सुन सकेंगे। नाटककार को परिस्थिति की उत्तान कल्पना करने की आवश्यकता ही क्या है ? हमारे जीवन के चारों ओर घटनाओं का अविराम प्रवाह बहता रहता है जिनमें प्राणों के तत्वों का अत्यन्त रहस्यमय सकेत रहता है। आवश्यकता इस बात की है कि इन घटनाओं को सजीव दृष्टि से देख कर उनकी व्यंजना में कथा वस्तु का निर्माण कर लिया जावे। यह कथावस्तु हमारे अत्यन्त निकट होगी। कला-चातुर्य केवल इस बात में है कि घटनाओं को अधिक से अधिक घनीभूत कर उन्हें कार्य-कारण की मनोरंजक शृंखला में कस दिया जावे। नाम-परिवर्तन के अतिरिक्त नाटककार को और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। कार्य-कारण की सबद्धता वस्तुतः प्रतिभा की आवश्यकता रखती है

और जिसमें अधिक प्रतिभा होगी वह नाटककार अत्यन्त कौतूहल पूर्ण कथावस्तु को भी अत्यन्त स्वाभाविक बना देगा। इस प्रकार प्रतिभा से पूर्ण नाटककार को अपने जीवन के अनुभवों से बाहर जाने की आवश्यकता नही रहती।

नाटक का प्राण उसके सघर्ष में पोषित होता है। यह सघर्ष जितना अधिक नाटककार की विवेचन शक्ति मे होगा उतना ही जिज्ञासामय उसका नाटक होगा। अतः नाटककार ऐसी स्थितियो की खोज मे रहता है जिसमे उसे विरोध की तेजस्वी शक्तियॉ मिलती हैं। नाटक लिखने के पूर्व उसके हृदय मे ही एक विप्लव होता है। वह उस विप्लव को अपनी अनुभूति की फूॅक से और भी उत्तेजित करता है। फिर उसे एक ज्वालामुखी का रूप देकर अपने नाटक मे रख देता है। उससे व्यक्ति और समाज की कितनी ही भाव-परपराएँ नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और फिर उस नष्ट हुए भाव-समूह से एक नवीन पथ के निर्माण की ओर नाटककार का सकेत होता है। कितने ही अन्ध-विश्वासों के भीतर से विश्वास की स्वास्थ्य-प्रद आशाएँ विकसित होती है। जीवन के अन्तराल मे छिपी हुई न जाने कितनी सुप्त प्रवृत्तियाँ जीवन मे पहली बार जाग्रत होती है।

ये प्रवृत्तियॉ मनोविज्ञान को गुदगुदाने से ही जागती है और इसके लिये अनुवीक्षण की आवश्यकता है। इस अनुवीक्षण में घटनाओं के साथ साथ पात्रों की रूप-रेखा भी स्पष्ट हो जाती है। यही कारण है कि इस सूक्ष्म दृष्टि से देखे हुए पात्रो के परिचय में

संकेत-लिपि अधिक विस्तारमय हो जाती है। रमेश में व्यक्तित्व का मोह है इसलिए वह अपने माथे के दाग को छिपाने के लिए चन्दन लगाये हुए है। लीला की लिपस्टिक चुरा कर किशोर अपने चित्रों मे रङ्ग भर रहा है क्योंकि उसे अपनी स्त्री का लिपस्टिक लगाना पसन्द नहीं है। इस प्रकार के संकेत-चित्रण से रङ्गमञ्च के सञ्चालक को चाहे पात्र के चुनाव और वेष-भूषा के निर्धारित करने में सहायता मिल जाय किन्तु इससे अधिक पात्रों के मनोविज्ञान को स्पष्ट करने की भावना है। स्त्री पुरुषों के मनोविज्ञान में आन्दोलन उपस्थित करने वाले प्रश्न नाटककार की लेखनी में अपना उत्तर पा सकते हैं। समाज और परिवार के संघर्षों को रङ्गमञ्च पर उपस्थित कर नाटककार जनता को अपनी वास्तविक स्थिति से परिचित करा सकता है।

हमारे सामने प्रश्न यह है कि हम जीवन का चित्रण किस प्रकार करें? क्या हम जीवन की नग्न परिस्थितियों को कला से सुसज्जित करके उपस्थित करें या जीवन के मौलिक एवं विकृत रूप को यथातथ्य घटनाओं से छीन कर रङ्गमञ्च पर रख दें। रूस के लेखकों ने तो अधिकतर यही किया है कि जीवन को अपने नग्न स्वाभाविक रूप में जैसे का तैसा रख दिया है। मैक्सिम गोर्की ने तो अपने उपन्यास और नाटकों में जीवन को ही साहित्य और कला मान लिया है। समाज के निम्न स्तरों से जीवन लेकर उसने अपने साहित्य का निर्माण किया है। नाटकों में कथा-वस्तु नहीं के बराबर है किन्तु चरित्र अत्यन्त आवेगमय और शक्तिशाली है।

घटनाओं मे कोई नाटकीय कौशल नही है, जीवन की स्वाभाविकता अपनी तीव्र गति से स्पष्ट होती चली गई है। 'दि चिल्ड्रेन अव् दि सन्' मे नायक की आत्महत्या और नायिका का पागलपन विवाह की वास्तविक समस्याओ पर गतिशील आलोक फेकता है। जीवन की दुःखपूर्ण और वास्तविक घटनाओ का क्रम एक निरन्तर प्रवाह की भाँति होता है।

यही बात चेखाव के साथ है किन्तु उसने नाटकीय कौशल में व्यंजना को प्रधान स्थान दिया है। पात्रों का कार्य-विन्यास जीवन के अनुरूप ही है। आना, जाना, हाव-भाव प्रदर्शित करना, कपडे पहनना आदि अत्यन्त वास्तविक ढङ्ग से किया गया है। ऐसा करना यद्यपि नीरस हो गया है तथापि उसमे मनोविज्ञान की सूक्ष्म प्रवृत्ति दर्पण के बिम्ब की भाँति झलक उठी है। नाटकीय कला की उसने इतनी चिन्ता नही की जितनी स्वाभाविक मनोविज्ञान के स्पष्ट करने की, किन्तु उसमे कला उपेक्षित भी नहीं है। 'दि सीगल' और 'थ्री सिस्टर्स' मे जीवन की गतिशीलता अत्यन्त क्रम-बद्ध रूप से उपस्थित की गई है। टाल्सटाय ने भी स्वाभाविक चित्रण का मार्ग ग्रहण किया किन्तु वह अन्त मे उपदेशक और आदर्श के समीप तक पहुँचने के प्रयत्न मे लग गया। 'दि लाइट दैट शाइन्स इन दि डार्कनैस' मे यदि वह धार्मिक जीवन की कठिनाइयों को स्पष्ट करता है तो 'दि पावर आव् डार्कनैस' में किसान के जीवन का क्रन्दन समाज तक खींच लाता है। टाल्सटाय ने वास्तविकता को आदर्शवाद से सबद्ध कर दिया है।

जीवन के यथार्थ चित्रण मे हम रूस के कलाकारो से बहुत अधिक प्रभावित हुए है। आज हम अपने नाटकों में इसी बात की मॉग करने लगे हैं कि हमे अपनी कठिनाइयों को अधिक से अधिक स्पष्ट करने का अवसर मिले। इसलिए हमारे अधिकाश आधुनिक नाटककार नाटक के अभिनयात्मक सौन्दर्य और वस्तु विन्यास के कलापूर्ण मार्ग से हटने से जा रहे है। ऐसा ज्ञात होता है कि हम साहित्य के क्षेत्र मे रूस के आदर्शों का ही अन्धानुकरण करते चले जा रहे हैं। आधुनिक चिन्तन मे साम्यवाद के जो विचार उठ रहे है उन्होने ही हमारे साहित्य में 'प्रगतिशील' रचनाओं को प्रोत्साहित किया है और हमारे नवीन लेखकों ने प्रगतिशीलता के नाम पर जो अपनी उच्छृंखलता पृष्ठों पर रख दी है वह हमारे जीवन की नैसर्गिक गतिशीलता से बहुत दूर जा पडी है। किसान और मजदूर की परिस्थितियों का सौ बार नाम लेकर भी हमारे नवीन साहित्यकार हमे साहित्य क्षेत्र मे आगे नही बढा सके है। उनका चिन्तन पक्ष जितना ही दुर्बल है, साहित्य पक्ष उतना ही निकृष्ट।

हमारे प्रगतिशील 'कलाकारो' ने अपने प्रचारात्मक दृष्टिकोण से साहित्य की चारु शीलता को नष्टभ्रष्ट कर दिया है। मानवी हृदय की अभिव्यक्तियॉ उनके सिद्धान्तवाद के बोझ से दब गई हैं। उनके साहित्य के 'चरित्र' मनुष्य के नैसर्गिक हाव-भाव के प्रतीक न होकर सिद्धान्तों के सीधे टेढे प्रतीक बन कर रह गए हैं। मनुष्य को भूल कर हम 'वर्ग' के पीछे पड गए है। हम वास्तविक वस्तु-

स्थिति से आँख बन्द नहीं करना चाहते किन्तु हम उसके प्रदर्शन मे साहित्यिक सुरुचि तो सुरक्षित रख ही सकते है जिसका प्रगतिशील साहित्य मे विनाश होने जा रहा है। हमारा अति आधुनिक हिन्दी साहित्य जिस उच्छृंखलता के साथ जा रहा है, उसमें मुझे भय है, कोई भी उत्तरदायित्व की भावना नही जान पडती। वह सौंदर्य को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहता है किन्तु पुनर्निर्माण के लिये कोई मार्ग निर्धारित नहीं करता।

इसमें कोई सन्देह नही कि जीवन की वास्तविकता हमारे नाटक की आधार-शिला होनी चाहिए पर जिस वास्तविकता में कोई आकर्षण नहीं है, वह हमें रुचिकर नही हो सकती। हमारे जीवन में सहस्रो घटनाएँ घटित होती रहती हैं किन्तु उनमें से कितनी हमें याद रहती है? और जब हमे रङ्गमञ्च के थोड़े से समय में जीवन का चित्रण करना होता है तब हमें जीवन की ऐसी घटनाएँ तो चाहिए ही जो हृदय की सहानुभूति प्राप्त कर सकें या हमारी रागात्मक प्रवृत्ति मे कुछ चेतना ला सके। यदि साधारण घटनाओ की आवृत्ति ही रङ्गमञ्च पर हो तो हमारा जीवन ही क्या कम वास्तविकता का केन्द्र है कि हम उसे भूल कर रङ्गमञ्च की शरण ले। परिस्थिति यह है कि हमारे जीवन की वास्तविकता को घनीभूत करने में हमें कला का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है और यहीं 'यथार्थ' में आकर्षण उत्पन्न होता है। रूप और रग का सन्निवेश हमारे अनुभव की घटनाओ में प्राण-प्रतिष्ठा कर रङ्गमञ्च पर मनोरञ्जन का साधन बनता है।

आपको अपने वार्तालाप मे भी अनुभव होगा कि जब आप किसी घटना को यथावत् कहते हैं तब उसमें लोगों को विशेष दिलचस्पी नही होती लेकिन जब आप उसी में अपनी ओर से नमक-मिर्च लगा देते हैं तो वही हँसने-हँसाने की सामग्री बन जाती है। घटना की अन्य साधारण बातों को हम छोड़ देते है और अपनी रुचि की बात को तीव्रतर करते हुए उसे हँसाने के बिन्दु तक खींच लाते हैं और तब वह बात एक स्मरणीय घटना बन जाती है! जीवन की घटनाएँ अपने अविराम प्रवाह में बहती रहती हैं। उनमें न तो कोई सजावट होती है और न कोई निश्चित एक-रूपता। जहाँ घटना तीव्रतर हो सकती है, वहाँ उसमें शैथिल्य मिलता है, उसमें जगह जगह गति में अवरोध भी होता है, कहीं उसमे अनावश्यक बातों से दिशा-परिवर्तन भी हो जाता है। संक्षेप में उसकी कोई निश्चित रूप-रेखा नहीं होती। कलाकार छूटी हुई बातों को अपनी प्रतिभा से जोड कर घटनाओं को एक सुनिश्चित रूप दे देता है। दबी हुई बातो को उभारता है और अनावश्यक बातों को काट-छाँट कर एक सुनिश्चित गति और दिशा आँखों के सामने स्पष्ट करता है। जगल में अनेक सुन्दर फूल खिले होते हैं जिनकी ओर हमारी दृष्टि भी नहीं जाती। यदि जाती भी है तो हम उनकी ओर आकर्षित नहीं होते। लेकिन जब उन्हीं फूलों का संकलन माला के रूप में होता है तब हम प्रत्येक फूल के सौन्दर्य पर मुग्ध होते हैं और माला के निर्माण में प्रत्येक फूल के रग और क्रम की आवश्यकता का अनुभव

करते है। इसी प्रकार कलाविद् नाटककार जीवन से ही घटनाएँ चुनता है लेकिन उनका क्रम और पारस्परिक सहयोग हमारे हृदय मे आनन्द की सृष्टि करता है और हम जीवन के रहस्यों से कुछ ही देर मे परिचय प्राप्त कर लेते है। इसलिए जैसा मैंने ऊपर कहा है नाटककार को जीवन से बाहर जाने की आवश्यकता नही, आवश्यकता केवल कलात्मक रूप से घटनाओ को उपस्थित करने की है। चिरन्तन अस्तित्व की पीठिका पर जीवन के कौतूहल को व्यजनात्मक भाषा मे उपस्थित करने की है। हमारे प्रगतिशील लेखक जीवन के इस प्रस्तुत करने की शैली में कला का ध्यान नही रखते, सौन्दर्य और सुरुचि की उपेक्षा करते हैं, यहीं मेरा उनसे मतभेद है। मै यहाँ तक तो मानने के लिए तैयार हूँ कि चरित्र के विश्लेषण या स्थिति के विस्तार मे मनोविज्ञान को प्रधान स्थान मिल जाय और कला को गौण, किन्तु कला का निर्वासन, सुरुचि और रग-रूप का वहिष्कार मेरे दृष्टिकोण से साहित्य की पवित्रता और उसका आकर्षण नष्ट कर देगा। इब्सन जो नाट्य जगत का प्रमुख नेता था, सदैव कला को यथार्थ की अनुचरी बनाता था। जैसे किसी वीर पुरुष के पीछे एक सजी हुई नव वधू चली जा रही है।

हमारे प्रगतिशील लेखको की दृष्टि सदैव कुरूपता की ओर जाती हैं, वे साहित्य मे सदैव इन्हीं को अंकित करना चाहते है। पहले से ही वे अपने दृष्टिकोण को साहित्य के व्यापक क्षेत्र में संकुचित बना लेते है। वे प्रकृति या जीवन का मंगलमय रूप नही

देखते। वे एक प्रतिहिंसा लेकर साहित्य का निर्माण करना चाहते है। साहित्य की रचना यदि प्रतिहिंसा लेकर हुई तो वह सर्वकालीन सत्य और सौन्दर्य से बहुत दूर होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। वे अपनी रचनाओं में कुत्सित चित्रो को उपस्थित करना चाहते है। वे इससे चाहे अपने समाज का हित भले ही कर ले पर साहित्य का हित नही कर सकेगे। उन्होने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए साहित्य को एक साधन मान लिया है। सामयिक और वर्गगत आवश्यकताओ का बोझ साहित्य को बहुत दूर नही चला सकता, वह बोझ से दब कर निष्प्राण अवश्य हो सकता है। फिर इस प्रकार की रचनाओं से हमारे प्रगतिवादी लेखक मंगलमय भावनाओं और चित्रो का आक्रोश पूर्ण बहिष्कार करते हैं। उन्हे गन्दी नाली अच्छी लगती है, वे हमेशा भूखे किसान और पसीने की दुर्गन्धि में डूबे मजदूर को ही साहित्य के सिर पर चढाकर साहित्य का शृंगार करना चाहते है। भूखे किसान और मज़दूर के चित्र किसी स्थल पर अच्छे हो सकते हैं पर उनका एकमात्र आधिपत्य हमारे साहित्य के बौद्धिक विकास में सहायक नही हो सकता। गन्दी बातो को अधिक से अधिक प्रश्रय देना यथार्थवाद के लिए आवश्यक हो गया है। हमारा प्रगतिशील लेखक अश्लीलता के किनारे बैठकर साहित्य के नाम पर अपनी वासनाओ का नृत्य देखना चाहता है। और मै यह जानता हूँ कि मै किसी आवेश मे यह बात नहीं कह रहा हूँ।

मैं परियों के देश की कल्पनाओं से हटकर वास्तविकता का क्षेत्र नाटक के लिए आवश्यक समझता हूँ। यहाँ तक तो यथार्थवाद अभिनन्दनीय है लेकिन इससे आगे साहित्य के पथ-भ्रष्ट होने की संभावना है। केवल अश्लील और कुरुचिपूर्ण क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं से साहित्य अपना वह स्वभाव खो देता है जो उसे सर्वव्यापी और सर्व हितकारी बनाता है। साहित्य मे स्थितियो का एक चुनाव होता है जिससे वह भावनाओं के केन्द्र मे सचित होकर हृदय में प्रवेश पाता है। हमारा प्रगतिशील लेखक दुःख, निराशा, करुणा, क्रान्ति और अश्लीलता की घटनाओ पर घटनाएँ जोड़ता है और चरित्रों को सिद्धान्तवाद की गाँठों में कसता चलता है। वह अपने दैन्य मे दैत्य की हँसी हँसना चाहता है और आशा करता है कि सारी दुनियाँ उसकी ओर आँख फाड़कर देखे और उसका पक्ष समर्थन करे। उसके लिए जीवन एक गन्दा नाला है जिसमें कीड़े की तरह मनुष्य बिलबिला रहे हैं। वे कीचड़ खाते हैं और दुर्गन्धि सूँघते हैं। वह चाहता है कि साहित्य में ये कीड़े, कीचड और दुर्गन्धि अमर हो जावे।

और मैं कलात्मकता के पक्ष मे वहीं तक हूँ जहाँ तक कि वह जीवन की वस्तु-स्थितियों को कुरुचिपूर्ण और नीरस होने से बचाती है। सुन्दर सुन्दर वाक्यों और अलकारमय वार्तालाप यदि नाटक में प्रगति उत्पन्न नहीं करते तो वे व्यर्थ है। केवल मनोरजन या हास्य के लिए पात्रो का देर तक वार्तालाप में उलझे रहना युक्ति-संगत नहीं है। आस्कर वाइल्ड के 'वुमन अव् नो इम्पारटेंस'

मे जो मनोरम वाक्यो की बेले सजाई गई है उनसे हम सन्तुष्ट नहीं होते क्योंकि उनमें से अधिकांश न तो कथानक की प्रगति में सहायक है और न चरित्र-चित्रण में। हमें तो वार्तालाप से घटनाओ के गूढ से गूढ आरोह और अवरोहों का ज्ञान हो जाना चाहिए। शब्दों मे ध्वनि और व्यञ्जना हो और हमारे हावो में सुख या दुःख का सपूर्ण मनोविज्ञान। जार्ज वर्नार्ड शा इस क्षेत्र मे अत्यन्त चतुर है। उनके सवाद अत्यन्त सरलता से पात्रों को याद हो जाते है क्योंकि पात्रो के हृदय मे ही सवाद के स्वर स्वाभाविक रूप से जन्म पा जाते है। आइरिश नाटककार जे० एम० सिंज के संवाद भी अत्यन्त मर्मस्पर्शी और काव्य छटा से ओत-प्रोत है।

रङ्गमञ्च पर स्वाभाविकता उत्पन्न करना सरल नहीं है। रङ्ग-मञ्च का ज्ञान ज्ञात रूप से दर्शक और पात्र दोनो को रहता है। उस सुसज्जित स्थान पर स्वाभाविकता की छाप डालना पात्रो के लिये कितना कठिन है, यह अनुमान किया जा सकता है। पात्रो को स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न तो करना ही पड़ेगा पर इस प्रयत्न में कोई ऐसी बात न हो जिससे ज्ञात हो कि पात्र प्रयत्न कर रहा है। समाचार-पत्र पढ़ना, रूमाल से पसीना पोंछना, कमरे मे टहलना, सिगरेट जलाते समय मुँह टेढ़ा करना आदि सभी बातें ऐसी हों जिससे यह ज्ञात न हो कि पात्र 'बन' रहा है। इन कार्यों का संबन्ध और व्यञ्जना आनेवाली या बीती हुई घटनाओ से भी हो तो कथा.वस्तु का संगठन और भी अच्छा हो सकता है।

समाचार पत्र पढ़ने की सार्थकता कथावस्तु के अन्तर्गत किसी विशेष घटना से जुड़ी हो, पसीना पोंछने में कथा-वस्तु का समय ग्रीष्म ऋतु होना या पात्र का थक कर घर लौटना हो, कमरे में टहलना पात्र के अशान्त चित्त का सूचक हो, सिगरेट जलाते समय मुँह टेढ़ा करना पात्रों की मूछों से सबन्ध रखता हो। कहीं दियासलाई की लौ से उसकी मूछें न जल जॉय, आदि। इन विस्तार पूर्ण किन्तु आवश्यक बातो से चरित्र और घटना की वहुत सी मनोवैज्ञानिक बातो का पता चल सकता है। व्यर्थ ही मे उन बातों का विस्तार हम आधुनिक हिन्दी नाटककारों में देखते हैं।

इस सकेत चित्रण का सबन्ध मनोविज्ञान के विश्लेषण से बहुत है। पश्चिम में तो नाटककारों का एक वर्ग ही ऐसा है जो रङ्गमञ्च पर मनोविज्ञान के चित्र ही उपस्थित करने मे अपनी कला की चरम सीमा समझता है। ऐसे नाटककार 'एक्प्रेशनिस्ट' के नाम से प्रसिद्ध हैं जिनमें यूजीन ओ 'नील', हेराल्ड राविसटीन और रोनाल्ड जीन्स प्रसिद्ध हैं। ये मन के 'एक्स-रे' फोटोग्राफ़र है जो पात्रों की सूक्ष्म से सूक्ष्म कल्पना को पकड़ कर रङ्गमञ्च पर कौतूहल उत्पन्न करते हैं किन्तु इन नाटककारों ने इस शैली की 'अति' कर दी है और नाटक की समस्त कलात्मकता खो दी है। वे रङ्गमञ्च को घुमाते हैं। जाने कैसी कैसी आवाज़ पैदा करते हैं। भूत प्रेत की तरह भाव सामने आते हैं। ज्ञात होता है—ये लोग चाकू लेकर मन का एक भाग फाड कर रङ्गमञ्च पर रख देंगे। मेरा अपना सिद्धान्त तो यही है कि रङ्गमञ्च पर रूपकों के द्वारा भी वे

अपने सिद्धान्त को पुष्ट कर सकते हैं। भयानक दृश्यों मे वे रङ्गमञ्च के वातावरण मे भयानक स्थिति का सकेत कर सकते है। सूनापन, शिलाएँ, वृक्षो के कंकाल क्या पर्याप्त नही होंगे? बेलजियम के मैटरलिक के रूपक इस क्षेत्र में श्लाघ्य हैं। दि प्रि सेस मेलीन मे नायिका की हत्या के साथ ही कुत्तों का भौकना, तूफान और पागल का विकृत हास्य भयानकता की व्यञ्जना मे सहायक होता है। इसी प्रकार प्रेम करुणा और हास्य के रूपक रङ्गमञ्च पर उपस्थित किए जा सकने है। अपने मित्र श्री सुमित्रानन्दन पन्त के नाटक 'ज्योत्स्ना' मे हमें मैटरलिक की रूपक शैली देखने को मिलती है।

आधुनिक जीवन को देखने हुए हमारे नाटकों को चरित्र-प्रधान होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति की रूप रेखा मनोभावों के विकासानुसार स्पष्ट होनी चाहिए। हमे वर्ग और समूह के पर्याय व्यक्तियों पर अधिक ध्यान देना चाहिए। क्योंकि उन्हीं के मनो-विज्ञान के सहारे हम जीवन के गूढ़ रहस्यों से परिचित हो सकने है। वर्ग के चित्रण मे सिद्धान्त की प्रमुखता पहले आती है और हमारे सामने जीवन का एक विशेष–सम्भवतः–मलीन और उदास–दृष्टिकोण आ जाता है। जीवन के प्रति असतोष हमे पहले से ही होने लगता है फिर हम स्वस्थ जीवन का रूप ही किस प्रकार निरूपित कर सकते हैं? शा ने जनता की रुचि की सदैव उपेक्षा की। उसने वास्तविक अ-प्रभावित जीवन को आधार मान कर समाज के दुराचरण की .खूब निन्दा की। उसने प्रत्येक स्त्री को बतला दिया कि वह क्या है, उसने प्रत्येक पुरुष को बतला दिया कि

उसका उत्तरदायित्व कितना और कैसा है। अतः स्वस्थ जीवन से लिए गए मनोभावो के अभाव मे अच्छी से अच्छी कथा स्वप्न के रङ्गीन और क्षणिक जाल से श्रेष्ठ नही हो सकती। हमारे प्राचीन भारतीय साहित्य मे नीति और उपदेश की प्रधानता रही है। हितोपदेश और पञ्चतन्त्र की कथाओ मे जीवन का उतना महत्व नही है जितना सिद्धान्त का। भारतीय नाट्य-शास्त्र मे भी नायक के द्वारा सद्‌गुणो को प्रश्रय देने की भावना है। लेकिन यह सब इसलिए है कि हमारा साहित्य धर्म से अनुप्राणित है और धर्म मे आचार शास्त्र के विधि-निषेध की भावना का रहना आवश्यक है। सस्कृत नाटको ने जहॉ कथा को आकर्षक रूप दिया है वहॉ उन्होने चरित्र की मीमासा भी अच्छी की है यद्यपि यह चरित्र की मीमासा आदर्शवाद को ही लेकर हुई। कथानक भी परपराओं से घोषित होने के कारण पश्चिमीय नाट्य कथा-वस्तु से भिन्न सा है उसमे चरमसीमा (Climax) के लिए कोई स्थान नहीं है, यद्यपि कौतूहल और जिज्ञासा की सबसे बड़ी शक्ति उसमें निवास करती है। जब हमारे सामने 'फलागम' का स्वर्ण-प्रदेश है जिसमे नायक अपने 'अधिकारो' को हस्तगत कर सफलता के सिहासन पर बैठता है तब उसे अन्तिम वाक्य के लिए 'भरतवाक्य' का ही वरदान मिलता है। समस्त नाटक मे नायक की विजय एक निश्चित धारणा है। उस पर चाहे जितने संकट आवे किन्तु अन्त में अपनी शक्ति से या दैव की प्रेरणा से वह प्रतिनायक को पराजित अवश्य करेगा। नाटक सभी परिस्थितियों मे सुखान्त होगा

क्योकि दक्ष, प्रियंवद और धार्मिक नायक का पराजय समाज में अनीति और अन्याय का मार्ग प्रशस्त करेगा। अतः समाज की व्यवस्था के लिए सत्य की विजय को दिखलाना अभीष्ट है। जब नायक की विजय का सिद्धान्त लेकर नाटक चलता है तब चरम सीमा (Climax) के लिए स्थान ही कहाँ रह जाता है जिसमे एक एक भावना नायक को मृत्यु या पराजय के मुख मे ढकेल सकती है। A false step and a tragedy अर्थात् 'एक गलत कार्य किया और दुखान्त' की भावना तो भारतीय नाट्यशास्त्र मे है ही नहीं। वहाँ आरभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम मे प्रतिनायक नायक को दुखी मात्र कर सकता है। इससे आगे बढने की क्षमता उसमे है ही नही। अतः भावना के आरोह और अवरोह के दृष्टिकोण से प्राचीन नाटकों के वस्तु-विन्यास का रेखा-चित्र कुछ इस प्रकार होगा।
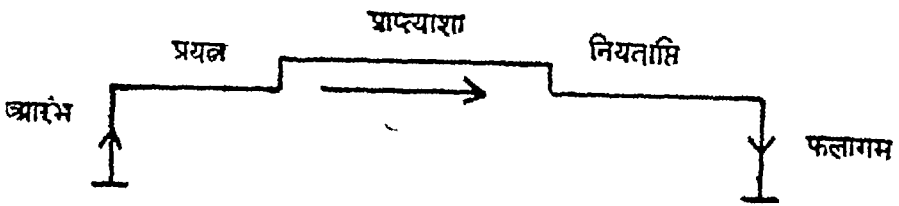
इस रेखा-चित्र मे प्राप्त्याशा का भावना-धरातल कुछ ऊँच अवश्य उठा हुआ है किन्तु इसमे चरमसीमा का भावना-विन्दु नहीं है।

पश्चिम के नाट्य शास्त्र के अनुसार सुखान्त और दुःखांत दोनों की परिणति घटनाओ की दिशा मे हो सकती है। उसमे

अन्तर्द्वन्द्व और घटनाओ का घात-प्रतिघात प्रमुख है। उसमें विषम परिस्थितियों की अवतारणा प्रमुख स्थान रखती है। जान गाल्सवर्दी ने तो अपने नाटकों की चरम सीमा वैषम्य मे की है। उनके वहुत से नाटक विषमता के अध्ययन(A study in Contrsats) हैं। दो भिन्न परिसितियाँ अपने सम्पूर्ण सत्य के साथ लड़ती है और यह सघर्ष पद पद पर व्यञ्जना के साथ आशा और निराशा की ओर झुकता है। इसलिए नाटक की सीमा अपने समस्त वेग से एक विन्दु मे सधी रहती है। इसके अनुसार कथा वस्तु का रेखा-चित्र कुछ इस प्रकार होगा —
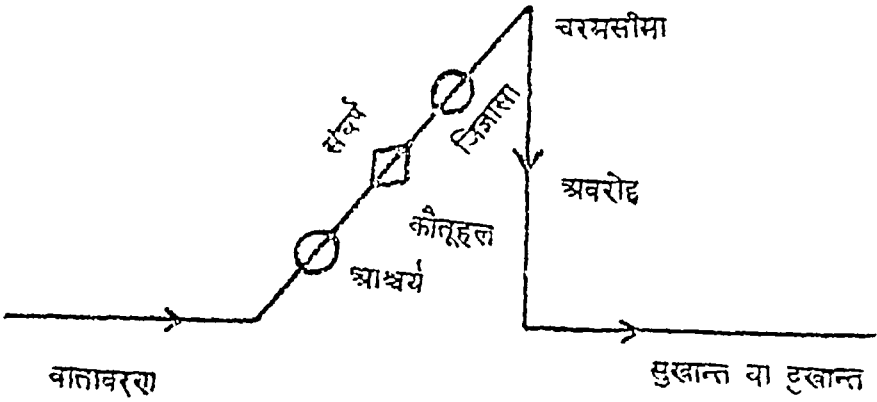
साधारणतः नाटक की कथा वस्तु यही रूप धारण करती है। किन्तु एकांकी नाटक में साधारण नाटक से वहुत भिन्नता होती है। उसके कथानक का रूप तव हमारे सामने आता है जव आधी से अधिक घटना वीत चुकी होती है। इसलिए उसके आरम्भिक वाक्य में ही कौतूहल और जिज्ञासा की अपरिमित शक्ति भरी रहती है। वीती हुई घटनाओं की व्यञ्जना चुम्बक की भाँति हृदय आकर्षित

करती है। कथानक क्षिप्रगति से आगे बढ़ता है और एक एक भावना घटना को घनीभूत करते हुए गूढ कौतूहल के साथ चरम सीमा में चमक उठती है। समस्त जीवन एक घंटे के संघर्ष में और वर्षों की घटनाएँ एक मुस्कान आँसू मे उभर आती है, वे चाहे सुखान्त रूप मे हो चाहे दुखान्त रूप मे। इस घनीभूत घटनावरोह मे चरम सीमा विद्युत की भाँति गतिशील होकर आलोक उत्पन्न करती है। और नाटककार समस्त वेग से बदल की भाँति गर्जन करता हुआ नीचे आता है। एकांकी नाटक की कथा वस्तु का रेखा चित्र मेरी कल्पना में कुछ इस प्रकार है।
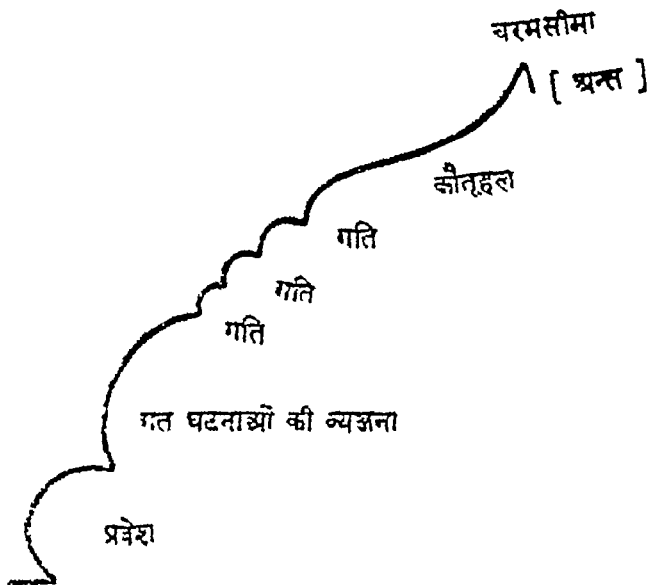
प्रवेश कुतूहलता की वक्रगति से होता है। घटनाओ की व्यञ्जना उत्सुकता से लम्बी हो जाती है। फिर घटना मे गति की

घनीभूत तरंगे आती है जो कुतूहलता से खिंचकर चरम-सीमा मे परिणत होती है। चरम-सीमा के बाद ही एकांकी नाटक की समाप्ति हो जानी चाहिए नहीं तो समस्त कथानक फीका पड़ जाता है। चरम-सीमा के बाद घटना विस्तार वैसा ही अरुचिकर है जैसे प्रेयसी से बातें करने के बाद आटे दाल का हिसाब करना।

मेरे सामने एकांकी नाटक की भावना वैसी ही है जैसे एक तितली फूल पर बैठकर उड़ जाय। उसकी घटनावस्तु से जीवन मनोरञ्जन के साथ निखरे हुए रूप मे आ जाय। नाटक के समझने मे न तो प्रयास की ही आवश्यकता हो और न थकावट की। संक्षेप मे जीवन का एक पृष्ठ उलट जाय और उसको उलटाते हुए आपके मुखपर सन्तोष और सुख हो। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि हमारी जनता की रुचि साहित्य की ओर अभी आकर्षित नहीं हुई। नाटककार अच्छे से अच्छा नाटक लिखकर भी उपेक्षित रहता है। हमे अपनी रचनाओं से जनता को साहित्यिक बनाना है और उसकी रुचि का परिष्कार करना है। यह तभी सम्भव होगा जब हमारे नाटककार निर्माता आलोचक और विचारक होंगे, जब वे जीवन को ऊँचे धरातल पर ले जाकर अधिष्ठित करेंगे।

आपके हाथो में मेरे एकांकी नाटकों का संग्रह है। मुझे इसके संबन्ध मे कुछ नहीं कहना है। आप मेरे प्रयासों के निर्णायक हैं। ये सभी नाटक रङ्ग मञ्च पर आ चुके हैं और दर्शकों को रुचिकर प्रतीत हुए हैं। देखना है आप इन्हें पसन्द करते हैं या नहीं।

मैंने आरम्भ मे 'परीक्षा' नाटक के रङ्ग मञ्च का मानचित्र दे दिया है। उसीके अनुसार अन्य नाटको के रङ्ग मञ्च की व्यवस्था परिवर्तन के साथ की जा सकती है। मैने एक ही बात को दुहराने की आवश्यकता नहीं समझी।

अन्त मे मै पूज्य प० अमरनाथ झा, वाइसचांसलर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी और डा० धीरेन्द्र वर्मा अध्यक्ष हिन्दी विभाग के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिन्हो ने मुझे इस क्षेत्र मे सदैव बल प्रदान किया है।

१६ मई १९४१. राम कुमार वर्मा

श्री रामकुमार जी वर्मा हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ कवि और अध्यापक हैं। साहित्य के इतिहास में बहुत कम ऐसे व्यक्ति हैं जो साहित्य के योग्य समालोचक भी हैं और स्वयं कलाकार भी हैं। रामकुमार जी की पुस्तकें जो आलोचना और अध्ययन के रूप में हैं अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। इनकी कविताओं का समस्त देश में बड़ा मान है। एकाङ्की नाटकों का एक संग्रह पहले प्रकाशित हो चुका है। यह दूसरा संग्रह भी हिन्दी में विशेष स्थान प्राप्त करेगा और मनोरंजन के साथ साथ उपदेश भी इससे प्राप्त होगा - यह मेरा विश्वास है।

अमरनाथ झा

२ ५ ४१

रेशमी टाई

१

परीक्षा

[मार्च १९४०]

पात्र-परिचय

१ डॉ० राजेश्वर रुद्र, डी० एस-सी०
विश्वविख्यात वैज्ञानिक — आयु ५४ वर्ष

२ प्रोफ़ेसर केदारनाथ, एम्० ए०
अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर — आयु ५० वर्ष

३ मिसेज़ रत्नानाथ, बी० ए०
प्रो० केदारनाथ की पत्नी — आयु २० वर्ष

४ मि० किशोरचन्द्र
डॉ० रुद्र का क्लर्क — आयु ३० वर्ष

५ रोशन
डॉ० रुद्र का नौकर — आयु ४० वर्ष

रंगमंच का मान-चित्र

स्थान—दिल्ली
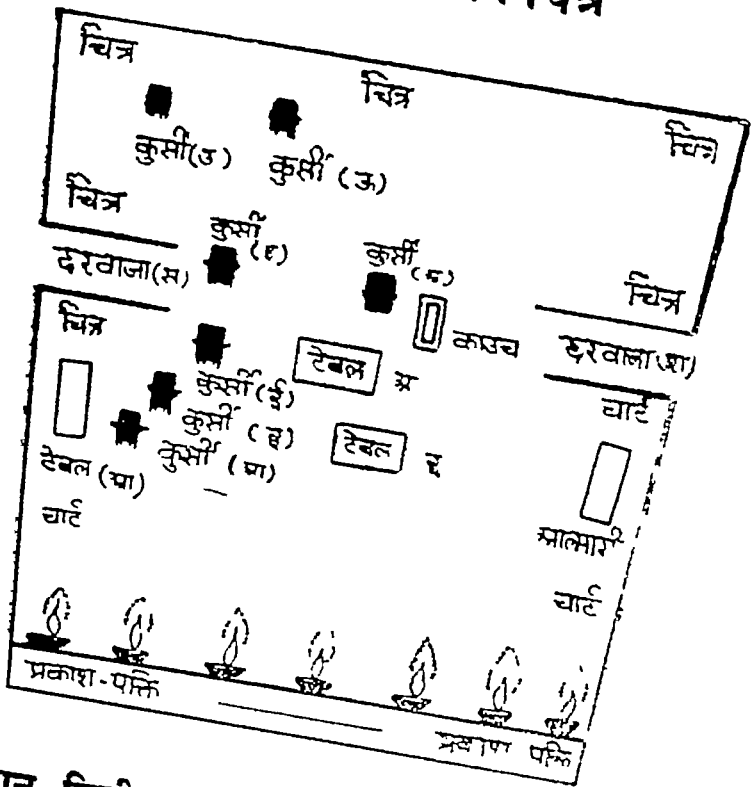
काल—सन् १९४० (मई २०)

इस नाटक का सर्व प्रथम अभिनय प्रयाग विश्वविद्यालय के म्योर हॉस्टल के विद्यार्थियों द्वारा १६४० में श्री० आर० एन० देव के निर्देशन में हुआ। भूमिका इस प्रकार थी :—

डॉ० राजेश्वर रुद्र—श्री० जी० सी० चतुर्वेदी

प्रो० केदार नाथ—श्री एम० एस० दत्त

मिसेज़ रत्ना—श्री दया सागर

किशोर—श्री एच० सी० वर्मा

रोशन—श्री एच० के० सिंह

सात बजे शाम। डॉ० राजेश्वर रुद्र, डी० एस्-सी० का आफ़िस। कमरे में संसार के वैज्ञानिकों के चित्र और चार्ट लगे हुए हैं। बीच में एक टेबुल (अ) है जिस पर फूलदान, फ़ोन, काग़ज़, क़लम आदि रक्खे हैं। आसपास दो-तीन कुर्सियाँ और एक काउच रखा हुआ है। दाहिने ओर एक टेबुल (आ) और कुर्सी है। टेबुल पर टाइपराइटर और काग़ज़ आदि हैं। डॉ० रुद्र का क्लर्क किशोर टाइपराइटर पर काम कर रहा है। एक नौकर झाड़न से टेबुल, कुर्सी और चित्र सावधानी के साथ साफ कर रहा है। कमरे में सन्नाटा है। केवल टाइपराइटर की आवाज़ हो रही है। एक मिनट बाद कमरे में घंटी बजती है, बाहर से शायद किसी ने स्विच दबाया है। किशोर रुक कर नौकर की ओर रुख़ करता है।

किशोर--रोशन, देखो बाहर कौन है।

[रोशन दरवाज़ा (स) से बाहर जाता है। किशोर काग़ज़ देखने लगता है। एक मिनट में रोशन एक कार्ड लेकर आता है और अदब से किशोर को देता है।]

किशोर—[देख कर] प्रोफेसर केदारनाथ। [सोचता है। रोशन से] उन्हें अन्दर ले आओ।

[रोशन बाहर जाता है। किशोर कुर्सी से उठ कर प्रो० केदारनाथ का स्वागत करने के लिये आगे बढ़ता है। दरवाज़ा (स) से प्रो० केदारनाथ का प्रवेश। प्रो० केदार ५० के लगभग हैं। बाल कुछ कुछ सफ़ेद हो गये हैं। अंग्रेज़ी वेषभूषा। हाथ में छड़ी।]

कि०—आइए, प्रोफ़ेसर केदारनाथ!

केदार—[हाथ मिलाते हुए] थैंक्स। डा० राजेश्वर रुद्र नहीं हैं क्या?

कि०—जी नहीं। वे अभी अपनी लेबोरेटरी से नहीं आये। [सोचते हुए] आप ही ने तो शायद ख़त भेजा था? जवाब तो गया होगा? बैठिए।

के०—हाँ, [कुर्सी (ई) पर बैठते हुए] 'जवाब तो मिल गया था, लेकिन मैं अपना प्रोग्राम नहीं लिख सका। मैंने अपना प्रोग्राम बदल दिया है। अब यहाँ सिर्फ एक दिन ही ठहर सकूँगा। काश्मीर परसों ही पहुँच जाना चाहता हूँ।

कि०—ऐसी जल्दी क्या है?

के०—जल्दी ही है। मैं डा० रुद्र से माफी माँगना चाहता था कि हम लोग आपके यहाँ नहीं ठहर सकेंगे। मेरी वाइफ भी मेरे साथ है। हम लोगों ने सोचा डा० रुद्र बहुत बिज़ी आदमी हैं, हम लोग उनके काम में……

कि०—नहीं, आपके ख़त का जवाब लिखाते वक़्त तो वे आपकी बड़ी तारीफ़ कर रहे थे। कहते थे—आप उनके पुराने दोस्त हैं। वे तो आपके ठहरने से ख़ुश ही होते!

के०—यह उनकी मुहब्बत है। सोचिए, इतना नाम कमा कर वे वैसे ही होमली बने हुए हैं। दुनियाँ में उनका कितना नाम है! सायंस के अखबार तो उनकी तारीफों से भरे रहते हैं। हम लोगों को अभिमान है कि वे हमारे ही देश के हैं।

कि०—जी हाँ।

के०—कब तक आवेंगे?

कि०—और दिन तो इस वक्त तक आ जाते थे, लेकिन आज न जाने क्यों देर हो गयी? शायद काम पूरा न हुआ हो। आजकल वे एक बड़ी गहरी खोज में लगे हुए हैं।

के०—अच्छा?

कि०—कहिये तो उन्हें फोन करूँ? [फ़ोन हाथ में लेता है।]

के०—नहीं, रहने दीजिए। उनके काम में खलल होगा। जब फ़ुरसत पायेंगे, चले आयेंगे। तब तक मैं ज़रा पोस्ट आफ़िस तक होता आऊँ। पोस्ट मास्टर से कुछ बात करना है। काश्मीर का एड्रेस भी देना है।

कि०—पोस्ट आफिस तो बन्द हो गया होगा।

के०—लेकिन मुझे पोस्ट आफिस क्वारटर्स जाना है।

कि०—जाने की क्या जरूरत है? फोन यूज़ कर सकते हैं।

के०—नहीं। उनसे मिलना भी है। यों ही टहलता हुआ जाऊँगा। हाँ, अभी कुछ देर बाद आ सकता हूँ। आप डॉ० रुद्र को मेरा कार्ड दे दें।

कि०—[नम्रता से] बहुत अच्छा।

[केदार का प्रस्थान दरवाज़ा (स) से। किशोर अपने टेबुल पर आकर फिर टाइप करने लगता है। दो मिनट बाद रोशन आकर किशोर से कहता है—]

बाबू, हुज़ूर आ रहे हैं।

[किशोर उठकर अदब से खड़ा हो जाता है। डॉ० रुद्र का प्रवेश दरवाज़ा (स)। आयु ५४ के लगभग। लेकिन काम अधिक करने से वृद्ध मालूम पड़ते हैं। आधे से अधिक बाल सफ़ेद हो गये हैं। गम्भीर व्यक्तित्व। अँग्रेज़ी वेषभूषा जो लापरवाही से पहनी गई है। सोने की कमानी का चश्मा। हाथ में छड़ी। क्लर्क सलाम करता है। डा० रुद्र सलाम का जवाब सिर हिला कर देते हैं। छड़ी एक कोने में रखते हैं और भारीपन से कुर्सी (अ) पर बैठ जाते हैं।]

रुद्र—एक गिलास पानी।

[किशोर अदब के साथ एक गिलास में आलमारी से बोतल निकाल कर पानी देता है। डा० रुद्र कुछ सोचते हुए धीरे-धीरे पानी पीते हैं। किशोर अपने पाकेट से विज़िटिंग कार्ड निकाल कर टेबुल पर रखता है। डॉ० रुद्र सोचते-सोचते विज़िटिंग कार्ड पर नज़र डालते हैं, ग़ौर से देखते हैं, फिर एकबारगी चौंक कर—]

प्रो० केदारनाथ !

कि०—जी हाँ, वे आये थे।

रु०—क्या वे यहाँ नहीं ठहरेंगे ? यह कार्ड कैसा ?

कि०—जी नहीं। वे माफी माँगने आये थे। वे एक दूसरी जगह ठहर गये हैं।

रु०—[ज़रा ज़ोर से] तुमने उन्हें रोका क्यों नहीं, मेरे आने तक ?

कि०—मैंने उनसे रुकने के लिये कहा था, लेकिन ज़रूरी काम से वे पोस्ट आफ़िस के क्वारटर्स तक गये हैं। अभी लौट कर आने को कहा है।

रु०—[गम्भीरता से] हूँ। तुम्हें रोकना चाहिये था उन्हें मेरे आने तक। [कुछ देर रुक कर] आज की डाक ?

कि०—जी हाँ, तेरह मैगज़ीन हैं। आपके रिटायरिंग रूम के टेबुल पर सजा दिये हैं। पढने की जगह निशान भी लगा दिये हैं। बाक़ी लेटर्स हैं।

रु०—[कुर्सी पर आराम से टिकते हुए] कहाँ के हैं ? सुनाओ।

कि०—[पत्रों को उलट-पुलट कर एक पत्र निकालते हुए] यह फ्रैंकलिन इन्स्टीटयूट वाशिंगटन के सेक्रेटरी का है। [पढ़ते हुए] डियर प्रोफ़ेसर रुद्र, युअर रिसर्चेज आर अव् वर्ल्ड वैल्यू। दि इन्स्टीटयूट हैज़ रिकोमैन्डेड युअर नेम फार इट्स फ़ैलोशिप। यू शैल हियर फ्राम अस विदिन ए मन्थ। काग्रेचुलेशन्स। एच्. एम्. जोन्स, सेक्रेटरी।

रु०—[किंचित स्मिति के साथ] एफ० एफ० आइ०। फैलो अव् दि फ्रैंकलिन इन्स्टीटयूट। अच्छा लिखो। (बोलते हैं, किशोर लिखता है।] डियर मिस्टर जोन्स, आइ थैंक दि इन्स्टीटयूट फ़ार दी आनर कनफ़र्ड आन मी। माइ सरविसेस आर फार दि इन्स्टीटयूट। युअर्स सिनसीयरली। दूसरा ?

कि०—[दूसरा पत्र निकालते हुए] कारनेगी इन्स्टीट्यूट बोस्टन का है। [पढ़ते हुए] डियर डॉ० रुद्र, युअर रिसर्चेज़ आन् दि कन-वर्शन अव् ए क्राइ इन् टू ए लाफ़्टर शैल मिटिगेट दि मिज़रीज़ अव् दि वर्ल्ड। प्लीज़ एक्सेप्ट अवर काग्रेचुलेशन्स। जी. हैमिल्टन, रजिस्ट्रार।

रु०—डियर मिस्टर हैमिल्टन, थैंक्स फार दि लेटर। दिस इज़ बट् एन् अश्बुल कान्ट्रीब्यूशन टू दि हैप्पीनैस अव् दि वर्ल्ड। थैंक्स। युअर्स सीनसीयरली।

कि०—[तीसरा पत्र निकालते हुए] यह पत्र इलाहाबाद के विज्ञान के सम्पादक का है। लिखते हैं, सेवा में डॉ. राजेश्वर रुद्र, महोदय, आपने मस्तिष्क सम्बन्धी जो खोज की है और तत्सम्बन्धी जो परिभाषिक शब्द दिये हैं उनसे विज्ञान-साहित्य के एक बड़े अभाव की पूर्ति हुई है। इस विषय में आगे का लेख भेजने की कृपा करें। भवदीय, सत्यप्रकाश, सम्पादक।

रु०—प्रिय डॉ० सत्यप्रकाश, आपके पत्र के लिये धन्यवाद। आगामी लेख दो महीने बाद भेज सकूँगा। आजकल काम मे वहुत व्यस्त हूँ। क्षमा करें। भवदीय।

कि०—[चौथा पत्र निकालते हुए] यह पत्र साइंस इन्स्टीटयूट, बगलोर का है। [इतने में रोशन दरवाज़ा (स) से आकर सलाम करता है और हटकर खड़ा हो जाता है। डॉ रुद्र रोशन की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखते हैं।]

रो०—हुज़ूर, वो साहब यहाँ आये हुए हैं जो अभी आये थे। [कार्ड देता]

रु०—[कार्ड लेकर बिना देखे हुए ही प्रसन्नता से] प्रोफेसर केदार ? [कार्ड देखते हैं। किशोर से] मि. किशोर, बाक़ी चिट्ठियाँ नौ बजे के बाद ? अभी इतनी चिट्ठियाँ ही ··[डॉ० रुद्र उठ खड़े होते हैं। रोशन से] भेजो उन्हें। [रोशन जाता है] ओ नहीं, मै ख़ुद [प्रसन्नता से आगे बढ़ते हैं। प्रो० केदार का प्रवेश। डा० रुद्र बड़ी उमंग से गले मिलते हैं।]

रु०—[गद्‌गद्‌ होकर] प्रोफेसर ···प्रोफेसर ·····के ·· दा ··र ··

के०—[प्रसन्नता से] डॉक्टर रुद्र, ओ रुद्र।

रु०—[अलग होकर] कब आये ?

के०—अभी दोपहर को।

रु०—तुम आये थे अभी ?

के०—हाँ, लेकिन तुम थे नहीं। मैंने सोचा तब तक पोस्ट मास्टर मिस्टर विश्वास से मिल लूँ। काश्मीर का एड्रेस वग़ैरह दे दूँ। वे भी घर पर नहीं मिले, जैसा गया वैसा लौट आया।

रु०—बैठो, मुझे ख़बर नहीं दी ? मेरे पास ही ठहरने वाले थे तुम तो ?

के०—[कुर्सी (इ) पर बैठते हुए] हाँ, इरादा तो यही था, लेकिन...

रु०—[उत्सुकता से] लेकिन क्या ? [कुर्सी (अ) पर बैठते हैं]

के०—मुझे अपना प्रोग्राम बदल देना पड़ा।

रु०—कैसे ?

के०—मुझे आज ही जाना है। मैं परसों काश्मीर पहुँच जाना चाहता हूँ।

रु०—लेकिन फिर भी मेरे पास ठहर सकते थे ?

के०—लेकिन ठहर नहीं सका। माफ करना डॉक्टर !

रु०—आख़िर है क्या बात ? ठहरे कहाँ हो ?

के०—मिस्टर जे० के० वर्मा के यहाँ। जानते होगे ट्रैफिक सुपरिन्टेन्डेंट हैं।

रु०—हाँ, हाँ, जानता हूँ। वे तो यहीं रहते हैं, कनाट सरकस में !

के०—उनकी वाइफ मिसेज़ शीला मेरी वाइफ की सहेली हैं। वहीं ठहरना पड़ा। फिर सिर्फ एक दिन की बात······

रु०—अरे ठहरो। सब बातें एक साथ मत कहो। पहले यह बतलाओ, तुम्हारी वाइफ···तुम्हारी वाइफ तो···तुम तो अकेले थे···? ऐं, ज़रा ठहरो [किशोर से] मि. किशोर, तुम ज़रा बाहर के कमरे में बैठो। अभी बुलवाऊँगा। [किशोर संजीदगी के साथ दरवाज़ा (स) से जाता है, रुद्र केदार की ओर मुड़कर] हाँ, तो यह कैसे······ तुम्हारी वाइफ······!

के०—[झेंपते हुए से] फिर ···फिर मैंने दूसरी शादी कर ली।

रु०—[प्रसन्नता से उछल कर खड़े होते हुए] ओ गुड, प्रो० केदार काग्रेचुलेशन्स। तुम में ज़िन्दगी है। तबीयत है। अच्छा ! तुमने ख़बर

नहीं दी ? [रोशन को पुकार कर] ओ रोशन, [रोशन का दरवाज़ा (स) से प्रवेश] ज़रा चाय और मिठाइयाँ लाओ।

के०—नहीं, डॉक्टर रहने दो। मैं अभी नाश्ता करके आ रहा हूँ।

रु०—अच्छा ! मिसेज़ केदार कहाँ हैं ? [नौकर से] जाओ सिगरेट और पान-इलायची लाओ।

[रोशन दरवाजा (स) से जाता है।]

के०--वे वहीं हैं, मिसेज शीला के साथ। मैं जब चला था तो खूब बातें हो रही थीं। बहुत दिनों के बाद मिली हैं न ?

रु०--उन्हें साथ नहीं लेते आये ? बुलवाऊँ ? ओः मैं खुद जाऊँ ? [प्रस्तुत होते हैं] लेकिन······[ठहर जाते हैं।]

के०—नहीं, इतनी तकलीफ़ करने की क्या ज़रूरत ? जाने के पहले वे आपके दर्शन ज़रूर करेंगी। आपसे मिलने के लिए उन्होंने ख़ुद मुझ से कहा था। बैठिए।

रु०--[बैठते हुए] ऐसी बात है ? तो मैं ज़रूर मिलना चाहूँगा। प्रो० केदार, काग्रेचुलेशन्स।

के०—थैंक्स, डॉक्टर !

रु०—तो तुमने शादी कर ही ली ! गुड, प्रोफेसर !

के०—मैं तो शादी करना ही नहीं चाहता था ! पचास के क़रीब हुआ, लेकिन फिर कर ही ली। सोचा··ज़िन्दगी ठीक हो जायगी !

रु०—ज़िन्दगी ठीक हो जायगी ! अच्छा किया। तब तो अच्छी ही होंगी ?

के०--अच्छी ! बहुत अच्छी !!

रु०--गुड, अच्छा इस शादी की शुरुआत कैसे हुई ?

के०—शुरुआत ? कुछ नहीं। वे मेरी स्टूडेण्ट थीं। बहुत होशियार। मैं उनसे ख़ुश रहा करता था, वे भी मुझ से ख़ुश रहा करती थीं। धीरे-धीरे मालूम हुआ कि हम लोग एक-दूसरे को · · · ·

रु०—अच्छा, तब तो बहुत पढी लिखी होंगी ?

के०—ग्रेजुएट हैं।

रु०—ग्रेजुएट ? ओ गुड ! तब तो उमर कुछ बड़ी होनी चाहिए।

के०—हाँ, यही बीस के क़रीब है।

रु०—तब तो काम में सचमुच बड़ी मदद मिलेगी। भला बुरा समझने की उमर और फिर लियाक़त में ग्रेजुएट !

के०—वाक़ई डॉक्टर, और फिर रत्ना बी० ए० पास है, लेकिन रहन-सहन बहुत सीधा-सादा है। बरताव तो बिलकुल मेरी तबियत के मुताबिक़ है।

रु०—काग्रेचुलेशन्स। ख़ुशी है ! इस उमर में तुमको ऐसे ही साथी की ज़रूरत थी ! [रोशन दरवाज़ा (स) से सिगरेट, पान-इलायची लाता है।] ओ, सिगरेट पियो, पान खाओ। रोशन, बाहर। [रोशन बाहर दरवाज़ा (स) से जाता है] ओ गुड ! [केदार की सिगरेट जलाता है।]

के०—[सिगरेट का धुँआ छोड़ते हुए] मैं तो पहले सोचता था कि वे मुझ से शादी करेंगी भी या नहीं ?

रु०—शायद यह बात तुम उमर के लिहाज़ से सोच रहे होगे !

के०—हाँ, कुछ-कुछ यही बात है। मेरी उमर ५० के क़रीब होगी, वे सिर्फ़ २० की हैं।

रु०—५० और २० [सोचते हैं।]

के०—और फिर एक ग्रेजुएट लड़की ! जानते हो डॉक्टर, ये ग्रेजु-एट्स क्या चाहती हैं ? स्वतन्त्रता--आर्थिक स्वतन्त्रता—इकनामिक फ़्रीडम—पति सिर्फ उनका साथी है—और पति का कर्तव्य क्या है ? काम्पिटीशन में बैठे, आइ. सी. एस्. में आवे !

रु०—[मुस्कुराकर] घर में चार नौकर और मोटर। यङ्ग कंपे-नियन !

के०—बिलकुल ठीक। इसी बात से तो पहले मैं झिझक रहा था।

रु०—झिझकने की क्या बात प्रोफेसर ? लड़की का टेम्परामेंट ही ऐसा होगा कि पढने-लिखने में ज़्यादा दिलचस्पी होगी। नहीं तो वे तुम्हें पसन्द ही क्यों करतीं ? आख़िरकार लड़की के अपने स्वप्न भी होते हैं। क्या वे सुन्दरता नहीं चाहतीं ? क्या वे नयी उमर नहीं चाहतीं ? यह तो आप भी जानते होंगे कि लड़की सफेद बालों के बजाय काले बाल ही पसन्द करती है।

के०—दिस इज़ एज़ श्योर एज़ देअर यूथ !

रु०—फिर जब उन्होंने तुमसे विवाह कर लिया तो क्या इससे यह साफ़ नहीं मालूम होता कि वे मामूली लड़की नहीं हैं ? वे उमर के मुक़ाबले में तुम्हारे स्वभाव या तुम्हारी लियाक़त की ज़्यादा क़ीमत करती हैं। वे गम्भीर स्वभाव की होंगी। प्राबेबली कोल्ड।

के०—नहीं, कोल्ड तो नहीं हैं। वे तो—

रु०—कोल्ड से मेरा मतलब यही है कि वे ज़्यादा सोशल न होंगी।

के.—हाँ, वे ज़्यादा सोशल तो नहीं हैं। बड़ी सरल हैं।

रु.—और वे प्रेम के बजाय तुम्हारा आदर ज़्यादा कर सकती हैं!

के.—क्या तुम इन सब बातों से कुछ खोज करना चाहते हो? तुम तो बड़े भारी साइकॉलोजिस्ट हो। मन की बहुत सी नयी बातें खोज निकालते हो। एक यह भी सही······

रु०—हाँ, है तो बहुत इटरेस्टिंग केस केदार, लेकिन···

के०—लेकिन क्या···? मैं बहुत दिनों तक इसी समस्या में उलझा रहा। वे ग्रेजुएट हैं, बी. ए. पास हैं। लेकिन वे मेरी तबीयत के ख़िलाफ नहीं जातीं। मेरे लिए सब कुछ अपने हाथ से करती हैं। लेकिन यह सब वे क्यों करती हैं? क्या इसलिए कि वे मेरी वाइफ़ हो गयी हैं? या इसलिए कि वे अपने दिल से यह महसूस करती हैं?

रु०—उनके दृष्टिकोण में एक उदारता होगी। अच्छा, यह बतलाओ कि जब वे तुम्हारी स्टूडेंट थीं तो ज़्यादा तो नहीं बोलती थीं?

के०—शायद बिना बोले हफ्ते गुज़र जाते थे। काम तो ठीक कर के लाती थीं, लेकिन बातचीत में हमेशा नपे-तुले शब्द। मैंने कभी उन्हें ज्यादा बोलते हुए देखा ही नहीं।

रु०—शायद उनकी ट्रेनिंग ही ऐसी हो। घर का वातावरण ही ऐसा होगा। उनके माता-पिता कभी आपस में न लड़े होंगे। पिता शायद सीधे और पुराने ख़्याल के हों।

के०--हाँ, यही बात है। उनके पिता एक गाँव के मालगुज़ार हैं।

रु०—यही बात हो सकती है। लेकिन उनके बी. ए. तक पढ़ने का कोई ख़ास कारण होना चाहिए ?

के०—उनके भाई का जोर था कि वे बी. ए. तक ज़रूर पढ़ें। उनके भाई एक जज हैं।

रु०—ठीक है। तो ज्ञान और शील दोनों बातें उनमें हैं। लेकिन······

के०--लेकिन क्या ?

रु०—[सोचते हुए] कुछ नहीं।

के०—नहीं ज़रूर कुछ है !

रु०—तुमने कभी उन्हें अकेले सोचते हुए देखा है ?

के०—वे कभी अकेली रहती ही नहीं।

रु०—क्या अकेले रहना नहीं चाहतीं ?

के०—जो भी हो, लेकिन वे हमेशा मेरे साथ ही रहती हैं। मेरे साथ ही हँसती-खेलती हैं। शादी होने के बाद वे कहीं गयी ही नहीं। दो तीन दिन के लिए सिर्फ़ अपने पिता के यहाँ गयी थीं।

रु०--कभी तुमने उन्हें उदास देखा है ?

के०--एक बार जब प्रो० उदयनारायण के यहाँ पुत्रोत्सव से लौटी थीं तो कुछ दिन तक कहती रहीं कि मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। लेकिन यह सब कहने के बाद वे शायद सम्हल कर हँसने की कोशिश करती थीं।

रु०--बहुत सुन्दर केस है, केदार !

के०—मै चाहता हूँ डॉक्टर कि तुम परीक्षा करके देख लो, चाहे जिस तरह। मुझे इतमीनान हो जायगा कि वे जो कुछ हैं, कहाँ तक हैं, कितनी गहरी हैं।

रु०—मैं तो समझता हूँ कि वे जितनी हैं, सच्ची हैं। यही हो सकता है कि आपके लिए प्रेम होने के वजाय उनके दिल मे आदर ज़्यादा हो। वे आपके लिए सब कुछ कर सकती हैं, सब कुछ दे सकती हैं।

के०—मैं भी ऐसा ही सोचता हूँ, लेकिन कभी-कभी उनके बरताव की सरलता देख कर मुझे शक होने लगता है कि यह सब किसलिए! मेरे लिए यह सब करने की क्या ज़रूरत है? मालूम होता है कि वे मुझ पर दया करती हैं। और यह दया क्यों? क्या वे मुझे अपने काम मे भुलाना चाहती हैं?

रु०—शायद!

के०—शायद क्यों? एक्सपेरिमेंट क्यों नहीं कर देखते? तुम तो बड़े भारी मनोवैज्ञानिक हो। फिर मेरे दोस्त। मेरे साथ पढ़े हुए। मैं किसी के सामने अपनी ज़िन्दगी का राज़ ही क्यों खोलता? तुम मेरे दोस्त हो, इसलिए तुम से कोई चीज़ क्यों छिपाऊँगा? जब मैं तुमको अपने दिल की बात बतला रहा हूँ फिर तुम क्यों इतना पीछे हटना चाहते हो?

रु०—मै पीछे नहीं हटना चाहता केदार, लेकिन एक्सपेरिमेंट करना एटीकेट के ख़िलाफ़ है। मैं तुम्हारे साथ इतनी बेतकल्लुफ़ी से बातचीत करता हूँ, लेकिन तुम्हारी वाइफ़ से कभी मिला ही नहीं।

मेरी तबियत तो स्टडी करने की होती है लेकिन…नहीं, नहीं… वेल केदार, अगेन कॉंग्रेचुलेशन्स।

के०—[व्यग्रता से] मुझसे कोई तकल्लुफ़ नहीं तो उनसे भी नहीं। फिर वे तो आपको जानतीं हैं। और कौन आपको नहीं जानता? फिर हमारे केस से अगर दुनिया होशियार बनती है तो इससे बढ कर ख़ुशी की कौन बात हो सकती है? मैं भी प्रोफेसर हूँ, रिसर्च के लिए कोई रोक नहीं।

रु०—हाँ, मैं देखना चाहता था केदार, उनकी साइकॉलाजी क्या है!

के०—तो तुम अपना एक्सपेरिमेंट कर सकते हो डॉक्टर! मैं मैं उन्हें यहाँ किस समय लाऊँ?

रु०—आजकल मैं एक दूसरे एक्सपेरिमेंट में लगा हूँ।

के०—हाँ, मैंने सुना था कि तुम इनस्ट्रूमेंट की सहायता से रोने की आवाज़ को हँसी में बदल सकते हो!

रु०—[खड़े होकर घूमते हुए] इसमें विचित्रता क्या है? मैंने हर एक स्वर के वाइब्रेशन (कम्पन) की स्टडी की है। जैसे 'ई' है। यह क्लोज़ लॉंग फ्रंट वावल—संवृत् दीर्घ अग्र स्वर है। इसके बोलने में जीभ के आगे का हिस्सा उठ जाता है। लेकिन 'ऊ' जो है वह क्लोज़ लॉंग बैक वावल है—संवृत् दीर्घ पश्च स्वर। इसके बोलने में जीभ का पिछला भाग उठता है। मैंने रोने के इस 'ई' को हँसने के 'ऊ' में बदलने में सफलता पायी है।

के०—[हँसता हुआ] यह तो बड़े मज़े की बात है। फिर दुनिया

में कभी रोना सुन भी न पड़ेगा। दुनिया से रोना ही उठ जायगा।

रु०—लेकिन इससे क्या ? रोने की भावना का उठ जाना ज़रूरी है। शायद हँसी सुनते-सुनते रोना भूल जाय !

के०—तब तो संसार का तुम बड़ा उपकार करोगे, डॉक्टर !

रु०—उपकार तो तब होगा जब मेरा नया एक्सपेरिमेंट पूरा हो जायगा।

के०—कौन सा ?

रु०—मै एक ऐसा रस बनाने में लगा हुआ हूँ जिसके पीने से बूढ़ा आदमी भी जवान हो सकता है।

के०—[उछल कर] ऐ, सचमुच ?

रु०—हाँ, बूढा भी जवान हो सकता है।

के०—तब तो क्या कहना ! मुझे दोगे डॉक्टर ?

रु०—ज़रूर। लेकिन . [सोचने लगता है।]

के०—लेकिन क्या ? क्या सोचने लगे ?

रु०—कुछ नहीं। मेरे मन मे यही बात उठी कि तुम्हारी इस ख़ुशी में क्या तुम्हारे बूढे होने की भावना नही पायी जाती ?

के०—(हँसकर) भला तुमसे मै क्या छिपा सकता हूँ डॉक्टर, लेकिन इस बात को छोड़ो। यह बतलाओ कि तुम उस रस का मुझ पर एक्सपेरिमेंट करोगे ?

रु०—हाँ, हाँ, इसमे तो मुझे ही आसानी होगी। मुझे कहीं दूर न जाना होगा।

के०—लेकिन यह बात असम्भव है, डॉक्टर ! एक रस से बूढ़ा आदमी ? जवान मे तबदील हो जाय !

रु०—असम्भव क्यो है ? पुराने ज़माने मे योगी लोग कितने दिनों तक जीते थे ? जानते हो वे क्या करते होंगे ? स्पाइनल कालम—मेरु-दण्ड के नीचे मूलाधारचक्र के सूर्य से जो विष का प्रवाह पिंगला नाड़ी से शरीर मे होता है, वे उसे रोक देते थे और सहस्र-दल-कमल के ब्रह्म-रन्ध्र के पास चन्द्र से इडा नाड़ी मे जो अमृत का प्रवाह होता है उसे और भी उत्तेजित करते थे। आदमी में काया-कल्प होता था। वह हज़ारों वर्ष तक जीता था। वे यह सब किसी यौगिक क्रिया से करते थे, मैं यह एक तरल पदार्थ से करना चाहता हूँ। मूलाधारचक्र के विष को अपने रस से नष्ट करना चाहता हूँ।

के०—तब तो डाक्टर बड़ी अच्छी बात होगी !

रु०—[प्रसन्नता से] इसमें कोई शक नहीं, बड़ी अच्छी बात होगी। आदमी हज़ारों वर्ष तक जवान रह कर ज़िन्दा रह सकेगा। आजकल की ज़िन्दगी कितनी छोटी है ! ५०, ६०, ७० बस। इतने मे क्या होता है ? जिन्दगी में इतनी बहुत सी बाते हैं जिनके लिए ५०, ६० वर्ष कुछ भी नही हैं। आदमी की उमर तो और बड़ी होनी चाहिए। हमारे देश मे तो औसत उमर सिर्फ २३ साल की है। हम और आप किसी दूसरे की ज़िन्दगी में साँस ले रहे हैं।

के०—सचमुच डॉक्टर, यह काम कर दो तो पहले हम तुम ही अमर हो जायँ।

रु०—और रत्ना ? मिसेज़ रत्ना !

के०—हाँ, वह भी। [सिर हिलाता है]

रु०—उसे क्यों भूल गये ?

के०—[कटते हुए] आँ, आँ, वह भी। उसे कैसे भूल सकता हूँ ? डाक्टर, इन बातों को...तुम्हारी इन खोजों को सुन कर तो मेरी तबीयत और भी हो आयी है कि तुम मेरी वाइफ की साइकॉलोजी की परीक्षा करो।

रु०—लेकिन मेरा साहस नहीं होता। एक अपरिचित और फिर स्त्री।

के०—मैं जो कहता हूँ। वह मेरी स्त्री है। तुम्हें जानती है। फिर तुम भी उसे जानने लगोगे।

रु०—फिर भी......

के०—अच्छा, एक बात सुनो। भीतर के कमरे में चलो। मैं तुम्हें बतलाऊँ। (उठ खड़े होते हैं।)

रु०—भीतर चलूँ ?

के०—हाँ, भीतर एक बात कह दूँ। उससे तुम सब समझ सकोगे।

रु०—अच्छा, चलो। एँ, ज़रा ठहरो। [ज़ोर से] किशोर [किशोर का प्रवेश] देखो, वे दो-तीन चिट्ठियाँ टाइप करो। मैं अभी आता हूँ, समझे ?

[डॉक्टर रुद्र का प्रोफेसर केदार के साथ दरवाज़ा (श) से प्रस्थान किशोर टाइप करता है। बैकग्राऊंड म्यूज़िक होता है। दो-तीन मिनट के बाद डॉ० रुद्र का प्रो० केदार के साथ हँसते हुए प्रवेश।]

रु०—अच्छी बात है। तो फिर आप कितनी देर बाद लौटेंगे ?

के०—यही पाँच मिनट में।

रु०—तो फिर भाई, मैं ज़िम्मेदार नहीं। तुम जानो।

के०—सब बातें मुझ पर छोड़ दो डाक्टर, कम से कम मुझे इत-मीनान तो हो जायगा।

रु०—अच्छी बात है।

के०—तो फिर मैं जाता हूँ। [चलने के पूर्व सिगरेट जलाते हैं।]

[अभिवादन-स्वरूप हाथ उठाकर केदार का प्रस्थान। डॉ० रुद्र कुर्सी (अ) पर बैठ कर सोचने लगते हैं। थोड़ी देर बाद किशोर से—] किशोर!

कि०—[पास आकर] कहिए।

रु०—देखो, मैं जो एक्सपेरीमेंट कर रहा हूँ उसकी सारी चीज़ें लाकर सामने रखो।

कि०—वही 'इंटरनल यूथ' की चीज़ें?

रु०—हाँ। [आदेश-दृष्टि]

कि०—बहुत अच्छा।

[किशोर आलमारी खोलता है। एक अलग टेबुल (इ) पर वह एक टावेल, दो बोतलें एक काली और छोटे मुँह की, दूसरी सफ़ेद और चौड़े मुँह की, एक बेसिन, एक फ़्लास्क, एक हरे रङ्ग का कपड़ा बड़ी सावधानी के साथ रखता है।]

कि०—स्टोव जलाऊँ?

रु०—हाँ। [बोतल उठा कर तरल पदार्थ देखते हैं।]

[किशोर स्टोव मे स्प्रिट डाल कर दियासलाई से जलाता है। इस बीच में कमरे में जो चार्ट लगे हुए हैं, डॉ० रुद्र उनका निरीक्षण कर रहे हैं। देखते हुए वे कोट उतारते हैं। फिर चौड़े मुँह की बन्द बोतल जिसमें एक बल्ब लगा हुआ है, तिरछी करके देखते हैं। स्विच आन करने से बोतल के अन्दर का बल्ब जल उठता है। बल्ब के प्रकाश में वे तरल पदार्थ को बड़ी सावधानी से देखते हैं। देखते हुए किशोर से—] स्टोव जल गया है ?

कि०—जी, पम्प करता हूँ। [स्टोव पम्प करता है।]

रु०—थोड़ा पानी गरम करो।

कि०—जी, [पानी एक बोतल से निकालता है, उसे गरम करता है।]

रु०—कल जो रिज़ल्ट्स निकले हैं, वे सिलसिलेवार हैं ?

कि०—जी हाँ।

रु०—उन्हें मेरे पास रखो।

[किशोर टेबुल (अ) से दो-तीन काग़ज़ निकाल कर बोतलों के पास टेबुल (इ) पर रखता है।]

रु०—यह नोट पढ़ कर सुनाओ। [एक काग़ज़ किशोर के हाथ में देता है।]

कि०—(लेते हुए) जी। [नोट पढ़ कर सुनाता है।] मूलाधार चक्र से आगे बढ़ते हुए इडा नाड़ी पाँच बार मुड़ती है। तब वह आज्ञाचक्र के समीप पहुँचती है। रस का घनत्व इतना होना चाहिए कि वह नाड़ियों के तरल पदार्थ को प्रभावित कर मूलाधार चक्र में कम

से कम चौबीस सेकेण्ड में अपनी सम्पूर्ण प्रक्रिया कर सके। उस रस के तत्व में गंधक·····[बाहर आवाज़ होती है। रोशन का प्रवेश दरवाज़ा (स) से। वह अदब से एक कोने में खड़ा हो जाता है। डॉ० रुद्र रोशन की ओर जिज्ञासा-दृष्टि से देखते हैं।]

रो०—हुज़ूर, प्रोफेसर केदारनाथ साहब और एक बीबी जी आयी हैं।

रु०—अच्छा, बाहर के कमरे में। [किशोर से] पानी गरम हो गया?

कि०—जी, ल्यूकवार्म।

रु०—ठीक, स्टोव बन्द कर दो। तुम बाहर जाओ। देखो 'साइंटिफिक अमेरिकन' अपने साथ लोगे और उसमें छपे हुए मेरे आर्टिकल की 'समरी' बनाओगे।

कि०—वही 'दि डेफीनीशन अव् ए क्राई'?

रु०—हाँ, वही। बाहर के कमरे में बैठोगे और प्रोफ़ेसर तथा उनकी वाइफ़ को यहाँ भेजोगे।

[किशोर स्टोव बन्द करता है, टेबुल पर से साइंटिफ़िक अमेरिकन की प्रति उठाता है। दरवाज़ा। (स) से प्रस्थान। डॉ० रुद्र काली बोतल उठाकर आलमारी में रखते हैं और एक दूसरी नीली बोतल निकालते हैं। फिर संजीदगी के साथ अभ्यागतों का स्वागत करने के लिए उठते हैं। कोट पहनते हैं और दरवाज़ा (स) के क़रीब तक बढ़ते हैं।] आइए, [प्रोफ़ेसर केदारनाथ और उनकी पत्नी रमा का प्रवेश। रमा का

गौर वर्ण। सुन्दर मुख-मुद्रा। नीली रेशमी साड़ी। जैसे एक शान्त बिजली बादल के वस्त्र पहन कर आयी है। सौम्य और गम्भीर।]

के०—[हर्षोल्लास के साथ] डॉ० रुद्र, ये मेरी वाइफ मिसेज़ रत्नानाथ और [रत्ना से] ये......

र०—[हाथ जोड़ कर] प्रणाम !

रु०—[हाथ जोड़ कर] नमस्कार !

र०—[प्रसन्नता से] आपके दर्शन कर कृतार्थ हुई।

रु०—[किंचित स्मिति के साथ] आपसे मिलकर ख़ुशी हुई। आइए, बैठिए। [डॉ० रुद्र मिसेज़ रत्ना को काउच पर बिठलाते हैं। केदार और रुद्र पास की कुर्सियों पर क्रमशः (इ) और (अ) पर बैठते हैं। रुद्र, केदार और रत्ना को पान देते हैं। केदार सिगरेट जलाते हैं ।]

र०—क्षमा कीजिए, मैं पान नहीं खाती। इलायची ही लिए लेती हूँ।

रु०—[संकोच-स्वर में] ज़रा माफ़ कीजिये, मैंने अपनी स्टडी और ड्राइंग रूम को एक में मिला रखा है।

र०—[हँस कर] ओह, इसमें कौन-सी बात है ? कमरे में तो सजावट है ही। इतने सुंदर चित्र लगे हुए हैं। शायद संसार के वैज्ञानिकों के हैं ! [गहरी दृष्टि से देखते हुए] उधर आइंसटीन हैं, ये मारकोनी, ये जगदीशचन्द्र बोस, ये मेघनाद साहा......(दीवालों पर दृष्टि फेंक कर) आपका चित्र नहीं दीख पड़ता ?

के०—हाँ, तुम्हारा फोटो कहाँ है, डाक्टर ? [प्रश्नपूर्ण दृष्टि]

रु०—[वीतरागी के भाव से] क्या आवश्यकता है ? विज्ञान के

स्वामियों के फ़ोटो लगा करते हैं, सेवकों के नही। [बात बदलते हुए] कहिए, मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ?

र०—जी नहीं, धन्यवाद।

के०—डॉ० रुद्र, आपसे मिलने की अभिलाषा में शायद इन्हें रास्ते की तकलीफ कोई तकलीफ़ नही मालूम हुई। और अभी जब मैंने इनसे आपसे मिलने के बारे मे कहा तो ये ऐसे ही तैयार हो गयीं। इन्हें आपके दर्शन की बड़ी अभिलाषा थी।

र०—जो आज सफल हुई।

रु०—धन्यवाद। मुझे बहुत ख़ुशी हुई आपसे मिल कर। मैं तो आपके प्रोफ़ेसर केदार का साथी हूँ। हम दोनों साथ पढते थे। इन्होंने अँग्रेज़ी ली थी, मैने फ़िज़िक्स। ये 'ला' करते रहे, मैंने प्राइवेटली फ़िलासफ़ी पढ़ी। इसके बाद हमलोग अलग हुए। मै डी० एस्-सी० कर दिल्ली आ गया, ये वहीं प्रोफ़ेसर हो गये। अगर फ़िज़िक्स के बजाय मैं फ़िलासफी ही लेता तो शायद प्रोफ़ेसर केदार के साथ होता।

के०—मुझे तो ख़ुशी होती।

र०—लेकिन ससार का अपकार होता। फ़िज़िक्स और फ़िलासफ़ी को मिलाकर आपने जितनी खोजें की, उतनी कौन करता? ऐसा वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक ससार मे कठिनाई से मिलेगा।

रु०—आप तो बहुत अच्छी हिन्दी बोलती हैं।

र०—हिन्दी मातृ-भाषा है न? अपने देश की राष्ट्र-भाषा।

रु०—हमारे देश को आप जैसी आदर्श देवियों की आवश्यकता है।

र०—मुझे लज्जित न कीजिए। आप अपनी महानता से ऐसा कह रहे हैं। इनकी (केदार की ओर संकेत कर) इच्छा थी कि रास्ते में दिल्ली रुक कर आपके पास ठहरें। मैं भी यही चाहती थी कि विश्व-विख्यात महापुरुष के सत्संग में कुछ समय सार्थक करूँ किन्तु साहस नहीं हुआ। मैं नहीं जानती थी कि आप इतने महान् हो कर इतने सरल हैं।

रु०—[गम्भीर स्मिति के साथ] धन्यवाद।

र०—फिर शीला मेरी सहपाठिनी हैं। उन्होंने लिखा था कि काश्मीर जाते समय मेरे यहाँ न ठहरोगी तो लड़ाई होगी।

रु०—हाँ, आजकल लड़ाई का ज़माना है! जिसे देखो वहीं लड़ता है। [हास्य] लेकिन आज शाम को खाना मेरे यहाँ ही होगा।

के०—नहीं डाक्टर, हम लोगों को देर हो जायगी। आज ही जाना है। थैंक्स।

र०—मिसेज़ रुद्र तो होंगी भीतर ?

रु०—नहीं, वे नहीं हैं। दस वर्ष हुए वे मुझे ससार में काम का भार सौंप कर चली गयीं! उनकी अन्टाइमली डैथ ने ही मुझे खोज के काम की ओर बढ़ाया। मैं मनुष्य-जीवन को अधिक स्थिर करना चाहता हूँ। काश, वे जीवित होतीं!

[रत्ना के मुख से अनायास आह निकल जाती है।]

के०—[वातावरण बदलते हुए] रत्ना, डॉ० रुद्र की खोज अचरज में डाल देने वाली है। इन्होंने एक ऐसा रस बनाया है जिससे

आदमी बहुत दिनों तक ज़िन्दा रह सकता है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इनके रस से बूढा भी जवान हो सकता है।

र०—[आश्चर्य से] सचमुच ?

रु०—लेकिन अभी वह रस ठीक तरह से तैयार कहाँ है ?

के०—क्यों उसमे कमी क्या है ?

रु०—उसके अन्तिम रूप के प्रयोग नहीं हुए हैं।

के०—तो मुझ पर कर सकते हो।

रु०—ज़रूर, तैयार होने पर कर करूँगा।

के०—लेकिन अभी क्या हानि है ? रस तो क़रीब क़रीब बन ही चुका।

रु०—हाँ, बन तो चुका है। लेकिन एकबारगी मनुष्य पर प्रयोग करना ठीक नहीं है।

के०—क्यों ठीक नहीं ? मेरी उम्र ५० के लगभग है। काम अब भी बहुत करना है। कभी थकावट मालूम होती है। मुझ पर प्रयोग करोगे तो मेरा ही भला करोगे।

रु०—मुमकिन है अभी उसका पूरा असर न हो।

के०—तो उसमें क्या हानि है ? एक दम २५ वर्ष का न हुआ तो दस-पाँच बरस छोटा हो ही जाऊँगा।

रु०—[रहस्य-पूर्ण मुस्कान से] मिसेज़ रत्ना, आपकी क्या राय है ?

र०—[संकोच से] मैं क्या कहूँ ?

रु०—प्रोफेसर केदार, अभी रस तैयार नहीं हुआ। यह देखो, अभी टेबुल पर ही रखा हुआ है। [उठ कर बोतल उठा कर उसे हाथों से झुलाते हैं] जब बन जायगा तो सचमुच मेरा जीवन सफल हो जायगा।

र०—आप तो अमर हो जाएँगे !

रु०—कौन जाने ? लेकिन अब अधिक जी कर क्या करूँगा ! जो कुछ थोड़ा-बहुत करना था कर ही चुका। और अब अकेला हूँ। मेरी स्त्री मेरा रास्ता देख रही होगी।

र०—आप ऐसी बातें न कहें। हृदय भर आता है। अभी आप न जाने क्या क्या खोज करेंगे !

के०—तब तक डॉ० रुद्र मैं तो तुम्हारे प्रयोग से लाभ उठाऊँगा ही। और टेबुल पर यह रस देख कर तो मेरी और इच्छा हो गयी है। डाक्टर, एक डोज़ मुझे दे दो। रत्ना……[प्रश्न-सूचक दृष्टि]

र०—[आकुलता से] अभी वह तैयार कहाँ हुआ है ? इस हालत में वह कहीं हानि न पहुँचावे ?

के०—डॉ० रुद्र का रस और हानि पहुँचावे ? असंभव, अब मैं अपनी तबीयत नहीं रोक सकता। तुम्हें देना ही होगा।

रु०—इतना इसरार ?

के०—हाँ, अब यह उमर मुझे तकलीफ देने लगी है। काम भी नहीं कर सकता, नींद भी नहीं आती।

रु०—अच्छा, तब दूँगा। लेकिन काश्मीर हो आओ। तब तक मेरे सब तो नहीं कुछ प्रयोग अवश्य हो चुकेंगे। फिर अभी ऐसी

ज़रूरत भी नहीं। काश्मीर जा रहे हो। वहाँ जाकर तो ख़ुद तुम में ताज़गी आ जायगी।

के०—यह तो ठीक है। लेकिन यहीं से काश्मीर का असर लेता चलूँ। तुम्हारे रस से जो कुछ कमी रह जायगी वह वहाँ पूरी हो जायगी।

रु०—मैं नहीं जानता।

के०—डॉक्टर, मैं जानता हूँ। मुझे रस दो।

रु०—मिसेज़ रत्ना, इसकी ज़िम्मेदारी आप पर है?

र०—मै क्या कहूँ! मै क्या कहूँ!!

के०—[उठकर] डॉक्टर, इसकी ज़िम्मेदारी ख़ुद मुझ पर है। दो वह रस। एक दोस्त की ज़रा-सी बात पूरी नहीं कर सकते?

रु०—मिसेज़ रत्ना?

र०—[केदार से] देखिए, आप अभी रस क्यों पी रहे हैं? अभी वह रस तैयार कहाँ है?

के०—वह रस ज़हर तो है नहीं कि मैं मर जाऊँगा। उससे कुछ न कुछ लाभ होगा ही। और रत्ना, ज़िन्दगी मुझे बहुत प्यारी मालूम होती है। मुझे इस दुनिया में और रहने दो।......

र०—[बीच में] मैं अब कुछ न कहूँगी।

के०—डाक्टर, प्लीज़......

रु०—अच्छी बात है। [उठकर] प्रोफ़ेसर अगर तुम युवक हो गये तो मिसेज़ रत्ना को भी प्रसन्नता होगी?

र०—मैं तो अब भी प्रसन्न हूँ।

के०—डाक्टर, वे ठीक कह रही हैं। लेकिन मेरी ख़ुशी में वे और भी ख़ुश होंगी।

रु०—अच्छा, तो फिर रस तुम्हें दे दूँगा। इस कुर्सी पर बैठो।

[टेबुल के पास की कुर्सी (ई) की ओर संकेत करते हैं।]

के०—[अत्यानन्द से] ओः, थैंक यू डाक्टर ! ओ थैंक्स, थैंक्स ! हाऊ गुड यू आर ! डाक्टर, एक्सलैंट [कुर्सी (ई) पर बैठते है] यू आर माइ ट्रू फ्रैण्ड।

रु०—व्हेन वाज़ आई नाट ? [रत्ना से] मिसेज़ रत्ना, प्रोफेसर अब युवक हो जायेंगे। बिलकुल नवीन…!

र०—डाक्टर रुद्र, देखिए इन्हें नुक़सान न होने पावे। मैं जानती हूँ कि आपके हाथ में ये सुरक्षित हैं, फिर भी मुझे घबराहट मालूम होती है। देखिए डाक्टर, आपका प्रयोग ठीक हो !

रु०—कोशिश तो मेरी आपके हित में होगी, लेकिन रस के इस स्टेज के विषय में मैं ठीक नहीं कह सकता।

के०—मैं ठीक कह सकता हूँ। अपनी सूरत तुम ख़ुद नहीं देख सकते, मैं देख सकता हूँ। रत्ना, तुम इतनी 'नरवस' क्यों होती हो ?

र०—मैं अजीब उलझन में हूँ।

के०—वह उलझन अभी दूर होती है। क्यों डाक्टर, जवान होने पर मुझे आप पहचान सकेंगे ?

रु०—[रत्ना से] आप प्रोफेसर केदार को पहचान सकेंगी ? [रत्ना चुप रहती है।]

के०—डाक्टर, इनकी पहचान काफी तेज़ है। मैं होली में इनके कुत्ते को ख़ूब रँग देता हूँ, तब भी ये उसे पहचान लेती हैं। तो क्या मुझे न पहचान सकेंगी ? (हास्य)

र०—[लज्जित हो कर] क्या कहते हैं आप !

के०—अच्छा रत्ना, मालवीय जी का कायाकल्प तो ठीक नहीं हुआ। डा० रुद्र की सहायता से मेरा कायाकल्प होगा। देख लो, मेरे इस दुबले-पतले शरीर को, इन सफेद बालों को, फिर ये देखने को न मिलेंगे। आख़िरी दर्शन हैं।

र०—आप बहुत हँसी करते हैं। [रुद्र से] डॉ० रुद्र, आपके सामने तो ये बहुत बिनोदी हो गये हैं।

के०—कमिङ्ग ईवेंट्स कास्ट देअर शेडोज़ बिफोर। अब युवक होने जा रहा हूँ, विनोद न सूझे ?

रु०—माफ करें मिसेज़ रत्ना, हम लोग आपस में बहुत बेतकल्लुफ हैं। अच्छा प्रोफेसर !

के०—हाँ, मैं बिल्कुल तैयार हूँ।

रु०—(टावल देते हुए) यह टावल भिगो कर अपने बाल गीले कीजिए। स्टोव पर गरम पानी है।

[केदार उठते हैं, टावल भिगो कर अपने सिर से रगड़ते हैं। इस बीच में डा० रुद्र रिज़ल्ट्स के काग़ज़ात जो क्लर्क ने टेबुल पर रख दिये हैं, देखते हैं। रत्ना अवाक् हो कभी डा० रुद्र की ओर और कभी प्रोफेसर केदार की ओर देखती है।]

रु०—[अपने आप] ट्वेंटी थ्री प्वाइण्ट सेवन एट सेकण्डस्, प्वाइंट ज़ीरो-ज़ीरो वन्।

के०—मेरे बाल गरम पानी से भीग गये।

रु०—[कागज़ से अपना ध्यान हटा कर] अच्छा कुर्सी पर बैठिए। [केदार कुर्सी (ई) पर बैठते हैं। रुद्र टेबुल पर से हरा कपड़ा उठा कर केदार के सिर से बाँधते हुए कहते हैं।]

सहस्रदल कमल तालू के मूल से सिर के ऊपरी भाग तक है। मैं इस कपड़े से उसे कसता हूँ। सहस्रदल कमल का हरे रंग से सामञ्जस्य है। जब आप रस पी लें तो इस कपड़े को खोल लें।

के०-डॉक्टर, आप ठीक कहते हैं। रत्ना, यह चमत्कार देखो!

रु०-और देखो, जो रस मैं आपको दूँगा, उसे एक घूँट ही मे पी जाना होगा। उसे एकबारगी मूलाधारचक्र में पहुँचना चाहिए। धीरे धीरे पीने से नुक़सान होने का अन्देशा है।

र०—[भर्राई आवाज़ में] जल्द ही पी जाइएगा!

के०--बहुत जल्दी।

रु०--और साथ ही यह सोचना पड़ेगा-कहना पड़ेगा—कि मैं जवान हो रहा हूँ—मै जवान हो रहा हूँ।

के०—ठीक है डॉक्टर, मैं ऐसा ही सोचूँगा, ऐसा ही कहूँगा।

रु०—और देखिए, मै दवा निकालने जाऊँगा, वैसे ही अंधेरा हो जाना चाहिए। नहीं तो उजेला आँखों की राह होकर दवा के गुण को नष्ट कर देगा। इस नीली बोतल में उजेले का प्रवेश नहीं है।

के०—ठीक, मालवीयजी ने भी कायाकल्प के प्रयोग अँधेरी कोठरी में किये थे।

रु०—(रत्ना से) अच्छा मिसेज़ रत्ना, आप उस दूर की कुर्सी पर बैठ जावें। प्रोफ़ेसर केदार, इस समय आप मिसेज़ रत्ना की बात नहीं सोचेंगे। सारी दुनियाँ को भूल कर ख़ुद को देखेंगे।

के०—ऐसा ही होगा।

[रत्ना दूर की कुर्सी (उ)पर जाकर बैठती है।]

रु०—तो अब मैं रस निकालता हूँ।

[डॉ० रुद्र बोतल हाथ में लेते हैं। स्टेज का सारा प्रकाश बुझा दिया जाता है। केवल बोतल और गिलास के उठाने और रखने की आवाज आती है। गिलास में तरल पदार्थ का 'छल'-'छल' शब्द होता है।]

रु०—प्रोफेसर, यह मैंने ग्लास मे रस डाल दिया।

के०—लाइए। (केदार रस पी जाते हैं।) डॉक्टर, मैंने यह रस पी लिया, मैंने सिर का कपड़ा भी खोल लिया।

रु०—अब जवान होने की भावना सोचिए।

के०—[धीरे-धीरे प्रत्येक शब्द पर रुकते हुए] मैं...जवान...हो...रहा··हूँ। मैं···जवान··हो··रहा··हूँ...

[आधे मिनट तक शान्ति रहती है।]

रु०—इस समय तक रस का असर हो गया होगा। कुछ अनुभव कर रहे हैं!

के०—हाँ, मुझ में बहुत अन्तर हो रहा है। मालूम होता है जैसे मेरे सिर में चीटियाँ चल रही हैं। हाथ पैर में कोई लहर दौड़ रही है। आँखों में कुछ बिजली सी चमक रही है।

र०—[उद्विग्नता से] क्या......?

रु०—[जीभ की सीटी से रत्ना को बीच ही में बोलने से मना करता है।] प्रोफ़ेसर केदार, अब आप जवान बन रहे हैं, यह तो होगा ही। लेकिन लहर ऊपर से नीचे जा रही है या नीचे से ऊपर ?

के०—नीचे से ऊपर।

रु०—(आश्चर्य से) एँ ?

[डाक्टर रुद्र शीघ्र ही प्रकाश करते हैं। उजेले में दीख पड़ता है, केदार बिलकुल बूढ़े हो गये हैं। उनके सभी बाल सफ़ेद हो गये हैं। आँखें कमज़ोर होकर बार-बार झपक जाती हैं। हाथ पैर शिथिल हो गये हैं।)

रु०-(उद्वेग से) यह क्या !

के०—[अपनी ओर देख कर] अरे, यह क्या ?

र०—[विह्वल होकर] अरे यह क्या ? [कुर्सी पर अचेत हो जाती है।]

रु०—[कुछ क्षण अवाक् रह कर धीरे-धीरे] प्रोफ़ेसर, यह क्या हुआ ? मिसेज़ रत्ना बेहोश हो गयीं !

के०—[करुण स्वर में] रत्ना ! [उठना चाहता है।]

रु०—प्रोफ़ेसर, वहीं बैठिए। मै सहायता करता हूँ। [रत्ना के मुख

पर पानी छिड़कते हैं।] ओफ, मिसेज़ रत्ना इतने कमज़ोर दिल की है !
[हवा करते हैं।]

के०—डाक्टर, इन्होंने मेरी यह हालत जो देख ली।

रु०—[रत्ना को पुकारते हैं।] मिसेज़ रत्ना ! मिसेज़ रत्ना !!

[हवा करते हैं। रत्ना होश में आती है।]

र०—[होश में आकर परिस्थिति की स्मृति आने पर] ओह, यह क्या हो गया ! [कुर्सी पर अत्यन्त शिथिल। फिर शीघ्रता से केदार के पास आकर ज़मीन पर बैठ जाती है।]

रु०—[ढाढ़स देते हुए] मिसेज़ रत्ना, आप अपना हृदय मज़बूत करें।

र०—ओह, ये कैसे हो गये !

रु०—मैं कहता था कि अभी रस तैयार नहीं है। सहस्रदल से अमृत उठने के बजाय मूलाधार का विष सारे शरीर मे फैल गया ! उसी से बुढापा आ गया !

र०—आह ! [अत्यन्त दुख की मुद्रा।]

रु०—मिसेज़ रत्ना, मुझे माफ़ करें। मेरे ही रस से यह सब कुछ हुआ ! लेकिन इसमें मेरा क़ुसूर बहुत थोड़ा है। प्रोफेसर केदार ने ही इतना ज़ोर दिया। [केदार के समीप कुर्सी (इ) रखते हुए] उठिए कुर्सी पर बैठ जाइए।

र०—ओह, यह क्या हो गया ! [कुर्सी पर बैठना अस्वीकार करती है।]

र०—[उमंग से उठकर] कैसे ? डॉक्टर कैसे ? जल्द बतलाइए ?

रु०—मैं देख रहा हूँ, प्रोफ़ेसर केदार से अधिक आपकी हालत ख़राब है। आप इतनी दुखी हैं तो केदार आपको देख कर और भी दुखित होंगे। मैं एक काम कर सकता हूँ।

र०—वह क्या ? [उत्सुकता की दृष्टि।]

रु०—मनोविज्ञान के अनुसार यह परिस्थिति केवल एक बात से हट सकती है। वह यह कि आप भी बूढ़ी बन जायँ। [रत्ना गंभीर हो जाती है।] उस वक़्त न प्रोफ़ेसर केदार को तकलीफ़ होगी न आपको ! फिर रस तैयार होने पर मैं आप दोनों को अच्छा कर लूँगा।

र०— [गंभीरता से, धीरे-धीरे] मैं भी बूढ़ी बन जाऊँ ? [कुर्सी (इ) पर बैठ जाती है।]

रु०—हाँ, आपको कोई कष्ट न होगा।

र०—डॉक्टर, क्या मेरे बूढ़े होने से प्रोफ़ेसर साहब को शान्ति मिलेगी ?

रु०—ज़रूर। वे चाहे कुछ न कहें किन्तु उन्हें तभी शान्ति मिलेगी। क्यो प्रोफ़ेसर केदार ?

[केदार कुछ नहीं बोलते।]

र०—[सोचते हुए] मुझे भी बूढ़ी होना चाहिए !

रु०—हाँ। [स्वर में दृढ़ता]

र०—तो···तो···फिर मुझे भी वही रस दीजिए। डॉक्टर, मैं इस ज़िन्दगी से घृणा करती हूँ। डॉक्टर, यह उमर मुझे नहीं चाहिए। डॉक्टर, इस अभिशाप से मुझे बचाइए। डॉक्टर···········

रु०—ठहरिए, ठहरिए मिसेज़ रत्ना ! ज़रा सोचिए।

र०—अब सोचने का अवकाश नही है। मैं भी इसी रास्ते से जाना चाहती हूँ।

रु०—ठीक है, आपको जाना चाहिए लेकिन इस पर विचार कर लीजिए। आप अपना बलिदान करने जा रही हैं।

र०—मैं इसके लिए तैयार हूँ। मुझे ज़िन्दगी की शान्ति किसी तरह नहीं मिलेगी।

रु०—मिसेज़ रत्ना, आप बहुत कुछ खो रही हैं।

र०—[तीक्ष्णता से] डॉ० रुद्र, मेरे पति की यह दशा देखकर आप मुझ से परिहास नहीं कर सकते।

रु०—[गांभीर्य से] मिसेज़ रत्ना ! मैं आप से परिहास नहीं करता—नहीं कर सकता। डॉ० रुद्र ने जीवन भर किसी से परिहास नहीं किया।

र०—मुझे क्षमा करें डॉक्टर, मैं इस समय अपने में नहीं हूँ।

रु०—मैं आपसे सिर्फ़ अपने सबन्ध में सोचने के लिए कह रहा था जिससे आप मुझे दोष न दें।

रु०—मैं आपको दोष नहीं दूँगी। आप शीघ्र ही अपना प्रयोग करें। (अनुनय)

के०—(एक साथ ही) ठहरो, मैं ऐसा नहीं होने दूँगा।

र०—नहीं, ऐसा होगा। मैं इस समय आपका निषेध न मानूँगी।

के०—[धीरे धीरे] मैं नहीं चाहता रत्ना, कि तुम ··तुम अपनी ज़िन्दगी बर्बाद करो। मैं तो मौत के क़रीब-क़रीब पहुँच गया। मेरे पीछे तुम क्यों अपनी दुनिया ख़राब करती हो?

र०—मेरी दुनिया अब रही कहाँ? आपकी इस दशा में मुझे यही करना चाहिए।

के०—रत्ना, यह रस तुम मत पियो।

र०—मुझे पीने दीजिए।

के०—यदि मैं यह रस तुम्हें न पीने दूँ?

र०—ऐसी दशा में कदाचित् मुझे आत्म-हत्या करना पड़े।

के०—ओह रत्ना! रत्ना! डॉ रुद्र! [उद्विग्न होते हैं।)

रु०—प्रोफेसर, अगर मिसेज़ रत्ना की इच्छा होगी तो वह रस वे पी सकती हैं।

र०—हाँ डॉक्टर, मैं पीना चाहती हूँ।

रु०—ठीक है। मैं अपना रस दूँगा। आपको अपने सिर पर हरा कपड़ा न बाँधना होगा। आप लोगों के मस्तिष्क की बनावट कपड़े की आवश्यकता नहीं रखती। केवल एक घूँट में रस पी जाना होगा।

र०—मैं एक ही घूँट में पी लूँगी।

रु०—केवल अँधेरा करना होगा। आपके कुछ सोचने और कहने की आवश्यकता नहीं है। बुढ़ापे के लिए कुछ सोचने की आवश्यकता नहीं होती। वह आप से आप आ जाता है। सिर्फ आँखें बन्द कर लीजिएगा।

र०—दीजिए वह रस मुझे!

रु०—अच्छी बात है।

(प्रकाश बुझ जाता है। बोतल के उठाने और रखने की पुनः आवाज़ आती है।)

र०—मैंने रस पी लिया, डॉक्टर!

के०—रत्ना, तुमने यह क्या किया!

र०—आप शान्त रहिए, मुझे कोई कष्ट नही है।

रु०—आप कुछ अनुभव कर रही हैं, मिसेज़ रत्ना?

र०—कुछ नहीं।

रु०—स्त्री के परिवर्तन में कोई कठिनाई नहीं होती। अब आप भी बूढी हो गयीं। आपके सभी बाल सफेद हो गये होंगे। अब मैं उजेला करता हूँ।

[डा० रुद्र स्विच 'आन' करते हैं। प्रकाश में दीख पड़ता कि रत्ना पूर्ववत् ही बैठी है। उसके बाल सफेद नही हुए। वह पहले ही की तरह रूप-रङ्ग वाली है। प्रो० केदार फिर वैसे ही हो गये। उनके बालों की सफ़ेदी दूर हो गयी। वे पूर्ववत् बैठे मुस्कुरा रहे हैं।]

र०—[अपनी ओर देख कर] अरे, मुझमें तो कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। यह कैसा रस? [प्रो० केदार की ओर देखती है। प्रसन्नता और उल्लास से] अरे, आप तो फिर वैसे ही हो गये, फिर वैसे ही हो गये! [केदार के समीप जाती है] ओ डॉक्टर, डॉक्टर, ये फिर वैसे ही हो गये!

के०—(मुसकुरा कर) हाँ, मैं तो फिर वैसा ही हो गया!

र०—(हर्षातिरेक से) रस तो मैंने पिया और ये अच्छे हो गये। आपका रस तो जादू है, डॉक्टर !

रु०—[मुस्कुरा कर] मिसेज़ रत्ना, प्रो० केदार का बुढापा और आपकी जवानी न्यूट्रलाइज़ हो गयी, मालूम होता है ।और आप दोनों फिर वैसे ही हो गये !

र०—ओह डॉक्टर, आप क्या हैं, कुछ समझ में नहीं आता ! [रत्ना हँसते-हँसते काउच पर बैठ जाती है। प्रोफेसर केदार मुस्कुराते हैं।]

रु०—(अत्यन्त शिष्टता के साथ) मिसेज़ रत्ना, मैं सब से पहले आपसे क्षमा माँगता हूँ।

र०—कैसी क्षमा ? (केदार से) देखिए, ये क्षमा क्यों माँगते हैं ?

के०—जो जितना बड़ा होता है, वह उतना ही नम्र होता है।

रू०—देवीजी, आप कितनी महान् हैं। आपकी प्रशंसा मुझसे किसी प्रकार हो ही नहीं सकती। आपके दर्शन कर मैं धन्य हुआ।

के०—मैं धन्य हुआ डॉक्टर ! ओफ, रत्ना भारत की रत्ना हैं।

र०—यह आप दोनों क्या कह रहे हैं ?"

रु०—देवीजी, यह मेरा केवल एक एक्स्पैरीमेंट था। न कोई बूढ़ा हुआ न जवान। थोड़ा-सा मनोविनोद होता किन्तु उससे आपको कष्ट हुआ। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

र०—[गंभीर हो कर] मैं कुछ समझी नहीं डॉक्टर !

रु०—मैं केवल नारी का मनोविज्ञान जानना चाहता था और इसके लिए मैंने आपके पति-देव प्रोफ़ेसर केदारनाथ जी से

आज्ञा ले ली थी। उन्होंने स्वय इस प्रयोग मे दिलचस्पी ली। इन्होंने स्वयं एकान्त में इस प्रयोग की रूप-रेखा खींची थी। मैने ईटरनल यूथ का रस तो आल्मारी में बन्द कर दिया था। केवल शर्बत आप लोगों ने पिया।

र०—(गंभीर होकर) अच्छा, तो आप लोगों ने मेरी परीक्षा ली।

रु०—जिससे आपका गौरव बढ़ा।

के०—मुझे सुख और सतोष मिला।

र०— डॉ० रुद्र, प्रशंसा के लिए धन्यवाद, किन्तु इससे मुझे प्रसन्नता नहीं हुई।

रु०—इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

के०—[हाथ जोड़ते हुए] मैं भी···[उठ खड़े होते हैं।]

र०—[बीच ही में] अरे, यह क्या करते हैं? आप दोनों मुझे लज्जित करना चाहते हैं!

रु०—नहीं, आप वास्तव में देवी हैं। मैं तो पहले ही जानता था कि आप सर्वगुण सम्पन्न हैं। आज संसार भी जान गया कि आपका आदर्श कितना महान् है।

र०—अच्छा, यह बतलाइए डॉक्टर, यदि आपका केवल यह प्रयोग था तो ये बूढ़े कैसे हो गये?

के०—मैं बूढा कैसे हो गया यह पूछना चाहती हो? पहली बार जब अँधेरा हुआ तो मैने अपने सिर में चाक रगड़ ली। मैंने अपना सिर गीला कर ही रखा था। बाल सफेद हो गये। तुम्हें कुछ दूर कुर्सी पर

इसीलिए तो बिठला रक्खा था कि तुम आसानी से मेरे भेद को न जान सको।

र०—(कौतूहल से) ऐसी बात थी ? आप बड़े वैसे हैं! फिर······आप फिर से कैसे पूर्ववत् हो गये ? बालों की सफेदी क्या हुई ?

के०—जब दूसरी बार अँधेरा हुआ तो मैंने गीली टावल से अपना सिर फिर ज़ोर से रगड़ लिया। सारी चाक टावल में लग गयी। मेरे बाल फिर पहले जैसे हो गये!

र०—(अन्यमनस्कता से) आप दोनों ने एक जाल रचा था। मैं तो लुटते-लुटते बच गयी!

के०—इसके लिए मैं माफी चाहता हूँ। जुरमाने में मैं वही गीली टावल दे सकता हूँ जिसमे चाक लगी हुई है। [गीली टावल कोट के भीतर से निकाल कर उपस्थित करता है।]

रु०—नहीं, इसका जुरमाना मैं दूँगा।

के०—(प्रसन्नता से) जो जुरमाना दे, रत्ना, मै तो कृतार्थ हो गया, मेरी सारी शंकाएँ निर्मूल हो गयीं!

र०—(आश्चर्य से) कैसी शंकाएँ ?

रु०—कोई शंकाएँ नहीं। आप तो देवी हैं। आपको कष्ट पहुँचाने की ज़िम्मेदारी मुझ पर है। मैं जुरमाना दूँगा। आज शाम को मैं एक बच्चे के रोने की आवाज़ हँसी में बदल कर आपका मनोरञ्जन करूँगा!

र०—सचमुच ! अनेक धन्यवाद ! लेकिन हम लोग तो आज जा रहे हैं।

रु०—लेकिन मेरे अनुरोध से आपको रुकना होगा। क्यों प्रोफेसर केदार ?

के०—रत्ना, जब डॉ० रुद्र इतना आग्रह कर रहे हैं तो आज रुक जाने में क्या हानि है ? एक दिन की देर और सही।

र०—अच्छी बात है, लेकिन एक शर्त पर। आप हम लोगों की जवानी और बुढापे की बात किसी से न कहें [हास्य।]

२

रूप की बीमारी

[जुलाई १६४०]

पात्र-परिचय

१—सोमेश्वरचन्द्र ।

[नगर के धनी सेठ हैं। इनके पास पूर्वजों की अर्जित लाखों की संपत्ति है। इनकी आयु लगभग ५० वर्ष की है। इनके एक ही लड़का है; उसका नाम है रूपचन्द्र। इसे वे बहुत प्यार करते हैं। एक मात्र यही उनके बुढ़ापे का सहारा है। वे उसके लिए सब कुछ कर सकते हैं। इससे बढ़ कर वे संसार में किसी चीज़ को नहीं समझते। पुत्र-प्रेम के संबन्ध में शायद वे ईसा की शताब्दियों में दशरथ के नवीन संस्करण हैं।]

२—रूपचन्द्र ।

[श्री सोमेश्वरचन्द्र के पुत्र। आधुनिक सभ्यता के पूरे मानने वाले हैं। वे आज कल एम० ए० के विद्यार्थी हैं। अपने पिता के प्रेम और औदार्य से पूर्ण लाभ उठाने की प्रतिभा उनमें है। आयु लगभग २४ वर्ष होगी।]

३—डॉक्टर दासगुप्त ।

[इनका पूरा नाम मुझे नहीं मालूम। ये लण्डन के एल० आर० सी० पी० हैं। मरीज़ों से बात करने में विशेष दिलचस्पी लेते हैं। उन्हें बीमारियों को अच्छा करने का तजुरबा भी ख़ूब है। बंगाली होने से भाषा का उच्चारण कभी-कभी वे बड़े हास्योत्पादक ढङ्ग से करते हैं,

लेकिन इसमें उन बेचारे का क़ुसूर ही क्या? नगर में लोगों का उन पर पूर्ण विश्वास है। आयु लगभग ४५ वर्ष होगी। बन्द कॉलर का कोट, चश्मा और हाथ में छड़ी उनकी विशेषता है।]

४—डॉ० कपूर।

[कपूर इनका असली नाम है और 'सरनेम' भी कपूर है। इसलिए लोग कपूर दो बार न कह कर एक ही बार कहते हैं, यों शैतान लड़के तीन या चार बार कपूर कह कर इनको चिढ़ाते हैं। ये बिलकुल अप-टु-डेट हैं। क्लीन शेव। सूट और टाई के रङ्ग का सामञ्जस्य इनकी रुचि है। हिन्दुस्तानी में काफ़ी अंगरेज़ी बोलते हैं। ये भी मशहूर डॉक्टर हैं। उमर यों बहुत नहीं है, यही ४० के लगभग होगी।

५—जगदीश।

६—हरभजन।

[ये दोनों श्री० सोमेश्वरचन्द्र के नौकर हैं। दोनों बड़े मेहनती हैं, लेकिन अपने मालिक को प्रसन्न नहीं कर पाते। बड़ी सञीदगी के साथ काम करते हैं। दोनों की उमर में कोई ख़ास अन्तर नहीं है। दोनों लगभग ३०-३५ वर्ष के होंगे। हिन्दुओं के घर की परंपरागत वेशभूषा ही उनकी वेषभूषा है। हाँ, धनी मालिक के नौकर होने के कारण उनके कपड़े अपेक्षाकृत अधिक साफ़ हैं।]

स्थान—इलाहाबाद का जॉर्ज टाउन।

समय—१५ सितम्बर, १९३८।

इस नाटक का सर्व प्रथम अभिनय प्रयाग विश्व-विद्यालय के सर पी० सी० बैनर्जी हॉस्टल के विद्यार्थियों द्वारा सन् १९४० में श्री एम० डी० ममगेन और श्री एल० एम० थपलियाल के निर्देशन में हुआ। भूमिका इस प्रकार थी :

१—रूपचन्द्र ... श्री जी० सी० जोशी

२—सोमेश्वर ... श्री जे० एन० स्वामी

३—डा० दासगुप्त ... श्री पी० सी० रस्तोगी

४—डा० कपूर ... श्री डी० आर० गुप्त

५—जगदीश ... श्री सी० एस० राघवन्

६—हरभजन ... श्री आई० बी० सिंह

सोमेश्वरचन्द्र के मकान का भीतरी भाग। कमरा सजा हुआ है। दीवारों पर चित्र लगे हुए हैं। सामने शङ्कर-पार्वती का एक बहुत बड़ा चित्र है। कमरे के बीचोंबीच एक ख़ूबसूरत पलँग बिछा हुआ है जिसमें आगे-पीछे बड़े शीशे लगे हुए हैं। पलँग पर तकिये के सहारे रूपचन्द्र आराम से टिक कर बैठा है। वह कमर तक रेशमी चादर ओढ़े हुए है। वह बीमार है, उसकी मुख-मुद्रा से मलीनता टपक रही है।

सिरहाने एक छोटी टेबुल है जिस पर दवाइयाँ, दवा पीने का ग्लास एक टाइमपीस घड़ी और थर्मामीटर रखा है। पास की दूसरी टेबुल पर कुछ फल रखे हैं। मेंटलपीस पर फूलदान तथा मिट्टी के ख़ूबसूरत खिलौने सजे हुए हैं। दोनों कोनों पर महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के बस्ट सुशोभित हैं। उनकी विरुद्ध दिशा में लेनिन और स्टेलिन के चित्र हैं। पलंग के समीप तीन-चार कुर्सियाँ पड़ी हैं। कमरे में अगरबत्ती की हल्की सुगन्धि महक रही है।

रूपचन्द्र के पिता श्री० सोमेश्वर चिन्तित मुद्रा में कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहल रहे हैं। पुत्र की बीमारी ने उन्हें बहुत अव्यवस्थित बना दिया है। वे बात-बात पर झल्ला भी उठते हैं। अपने

प्यारे पुत्र की बीमारी बेचारे पिता के जीवन का सब से बड़ा अभिशाप होकर जैसे कमरे के वातावरण का निर्माण कर रही है। इस समय दिन के तीन बजे हुए हैं।

सोमेश्वर चन्द्र—[कमरे में टहलते हुए] बुढापे में भी चिन्ताएँ पीछा नहीं छोड़तीं, सोचता था—तुम्हारी पढ़ाई के बाद सारा काम तुम्हें सौंप कर आराम से शङ्कर का भजन करूँगा, लेकिन पूर्वजन्म के पाप कहाँ जायेंगे ? चिन्ता-चिन्ता-चिन्ता ! रोज़ कोई न कोई चिन्ता सिर पर सवार है। आज सिर में दर्द तो कल पेट में दर्द । [ठहर कर] तुम बीमार हो गये ! रूप, तुम क्या समझो मेरे दिल का क्या हाल हो रहा है ? कितनी मुश्किल से तुम्हें इतना बड़ा किया है। आँखों के तारे की तरह तुम्हें बचाया है। तुम्हारी माँ के जाने के बाद मैं तो और भी कमज़ोर हो गया, जैसे हाथ-पैर टूट गये। मैं अकेला आदमी। रोज़गार भी सँभालूँ और तुम्हें भी देखूँ ? और क्यों न देखूँ ? तुम्हारी माँ जैसे मेरे दिल में बैठ कर बार-बार कह रही है—मेरे रूप को अच्छा रखना, मेरे रूप को अच्छा रखना···। रक्खूँगा देवी, रक्खूँगा। इधर तुम बीमार हो गये ! अब मैं क्या करूँ ! रूप, तुम अच्छे हो जाओ—जल्द अच्छे हो जाओ। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ करने के लिए तैयार हूँ।···[गहरी साँस लेकर] आज तुम्हारा टेम्परेचर कितना था रूप ? [थर्मामीटर उठाता है।]

रूपचन्द्र—[धीमे स्वर से] नाइएटी-नाइन प्वाइएट सिक्स।

सो०—[दुहरा कर अशान्ति से] नाइएटी-नाइन प्वाइएट

सिक्स ! इन कम्बख़्त डॉक्टरों की जेब में रुपये भरा करूँ और मेरे रूप की तबीयत ठिकाने पर न आये ! इन डॉक्टरों के लिए कोई सज़ा भी तो क़ानून ने नहीं बनाई। रोगी की ज़िन्दगी के साथ रुपये का सौदा करते हैं। ये डॉक्टर नहीं, बीमारी के वकील हैं। रुपये खा कर बीमार को भी खा डालने का हुनर सीखे हुए हैं। रोज़गारी कहीं के ! अगर यह दलाली करते हैं तो मुझसे करें, मेरे रूप के पीछे क्यों पड़े हुए हैं। उसे अच्छा कर दें, फिर मुझसे निबट लें ! [टेबुल पर फलों को देख कर] रूप, आज तुमने फल-वल कुछ खाये ? ये टेबुल पर कैसे हैं ? [पुकार कर] जगदीश ! जगदीश !!

जग०—[बाहर से] आया हुज़ूर ! [जगदीश का प्रवेश ।]

सो०—तुम बाज़ार से फल वल लाये थे ?

जग०—सरकार, लाया था ।

सो०—ये फल कैसे हैं ? [टेबुल पर रखे हुए फलों की ओर संकेत ।]

जग०—सरकार, ये कल के हैं।

सो०—ये रूप को क्यों नहीं खिलाये गये ?

रूप०—बाबू जी, मुझसे खाये ही नहीं गये ।

सो०—[झल्ला कर] खाये कैसे जायँ ? बासे और सड़े फल भी कहीं खाये जा सकते हैं ! बाज़ार की सब से सड़ी चीज़ मेरे यहाँ लाई जायगी। इन कम्बख़्त नौकरों से भी कहीं कोई अच्छा काम हुआ है ? गोया मेरे घर के पैसे बाज़ार में फेकने के लिए हैं ! [एक फल को हाथ

में ले कर] ये देखो आज नहीं तो कल ज़रूर सड़ जायँगे। इन्हें कोई खा कर और बीमार पड़े! ठहरो, मैं यह सब तुम्हारी तनख़्वाह में से काटूँगा। आयन्दा देखता हूँ कि तुम ठीक फल लाते हो या नहीं। आज बाज़ार से ताज़े फल लाये थे?

जग०—लाया था सरकार!

सो०—क्या-क्या लाये थे?

जग०—सेव, सन्तरे, अनार, अङ्गूर।

सो०—और मोसम्मी नहीं लाये?

जग०—सरकार, मिली ही नहीं।

सो०—[व्यंग से] मिली ही नहीं! मिले कैसे? जब आप लोग मेहनत करें तब न मिले? वेगार जैसा काम! मिली ही नहीं—तुमने खोज की थी?

जग०—सरकार, बहुत खोजी, मिली ही नहीं।

सो०—कहाँ खोजी?

जग०—कटरे में।

सो०—(दुहरा कर) कटरे में! चौक तो जा ही नहीं सकते! जनाब के पैरों में दर्द होता है। चौक जाने में पैर घिस जायँगे। आप लोग हैं किस मर्ज़ की दवा? चलिये बैठिए घर पर। तमाखू पीजिए। मैं जाऊँगा फल लेने।

जग०—सरकार, दवा भी लानी थी, इसलिए चौक नहीं जा सका।

सो०—[चिढ़ कर] अरे, तो क्या तुम्हीं अकेले घर में नौकर

हो ? हरभजन से कह दिया होता। वह सुअर कहाँ मर गया था ? वह दवा ले आता। कहाँ है हरभजन ?

जग०—सरकार, फल धो रहा है।

सो०—बुलाओ उसे। [जगदीश जाता है।] इन बेईमानों से सौ बार समझा कर कहो, लेकिन इन लोगों की अक्ल मे बात समाती ही नहीं। कहाँ कहाँ के नौकर मेरे यहाँ इकट्ठे हुए हैं ! गोया मेरा मकान यतीमख़ाना है। खायेंगे भर पेट, लेकिन काम ? काम, रत्ती भर भी नहीं।

रूप०—[शान्ति से] जाने दीजिए बाबू जी।

सो०—तुम्हें तकलीफ जो होती है बेटा। एक रोज़ की बात हो तो जाने भी दूँ। रोजबरोज ये लोग सिर पर चढते चले जाते हैं। गोया हम लोगों का सर इन्हीं लोगों से बकझक करने के लिए···[जगदीश हरभजन को लेकर आता है।] क्यो रे हरभजन, क्या कर रहा था ?

हर०—सरकार, फल धो रहा था।

सो०—दस घटे तक फल ही धोये जायँगे ?

हर०—सरकार, छोटे सरकार के पैर मींज कर अभी तो गया था।

सो०—अभी तो गया था ! बड़े भोले हैं जनाब ! जैसे इन से कोई क़सूर हो ही नहीं सकता ! फल कैसे धो रहे हो ?

हर०—सरकार, बहुत अच्छी तरह से धो रहा हूँ।

सो०—[पुनः दुहरा कर] बहुत अच्छी तरह से धो रहा हूँ। गधे कहीं के। मैं पूछता हूँ पानी में परमेगनेट पोटास मिलाया है ?

हर०—हाँ, सरकार, रोज़ 'परमेनग पुटास' मिलाता हूँ। आज भी मिलाया है।

सो०—ख़ाक मिलाया है। मैं तो इन लोगों से हार मान गया। जाओ, फल ठीक करो। [हरभजन जाता है।] जगदीश, अभी डॉक्टर नहीं आये?

जग०—नहीं सरकार।

सो०—अभी क्यों आयेंगे? रास्ता देखिए, इन्तज़ार कीजिए, दस घण्टों तक। बिना दस बार नौकर गये, नाज़ ही नहीं उठते। मैं तो मरा जा रहा हूँ इन डॉक्टरों के मारे। गोया लाट साहब हैं। एम० बी० बी० एस० क्या हो गये हैं, जैसे दुनिया भर के चचा हैं। दवा से फायदा हो चाहे न हो, फीस लेंगे और बेचारे रोगी को पीस लेंगे। [ठहर कर] रूप, इन डॉक्टरों ने तुम्हें बहुत तङ्ग किया लेकिन बतलाओ मैं क्या करूँ? तुम इस बार अच्छे हो जाओ, फिर देख लूँगा इन सारे डॉक्टरों को। [फिर ठहर कर] और तुम उदास रहते हो तो जैसे मेरा रोयाँ रोयाँ दुखी हो जाता है। तुम हँसा करो, ज़रा ख़ुश रहा करो। फिर देख लूँगा एक-एक डॉक्टर को। तुम खुश तो हो जाओ। [हँसने का अभिनय कर] हाँ, हाँ, ज़रा हँसो। [रूपचन्द्र मुस्कुरा देता है।] वाह-वाह, क्या कहना। अब तुम बिलकुल अच्छे हो जाओगे। अरे हरभजन, ज़रा फल तो ला!

हर०—[भीतर से] लाया हुज़ूर!

सो०—अरे जल्दी ला। मेरा रूप अब बहुत जल्दी अच्छा हो जायगा। हरभजन बहुत अच्छे फल धोता है। फलों को धोकर पाव

भर तो गन्दा पानी निकालता है। जगदीश, तुम बाहर बैठो, जैसे ही डॉक्टर आयें, मुझे ख़बर दो। समझे ?

जग०—बहुत अच्छा सरकार ! [जाता है।]

सो०—फल खाने से बहुत फ़ायदा होता है। वह क्या कहलाता है ? विटामिन ! हाँ, विटामिन, क्यों रूप ? [रूप सिर हिलाता है।] मैं तो कुछ जानता नहीं। इन्हीं कम्बख़्त डॉक्टरों ने न जाने क्या क्या खोजकर निकाला है। [हरभजन फल लेकर आता है।] वाह, हरभजन, तू बहुत अच्छे फल धोता है। ला, मैं अपने हाथ से तेरे छोटे सरकार को कुछ खिलाऊँ। [कुर्सी पर बैठ जाते हैं।]

रूप—बाबू जी, खाने की तबीयत नहीं होती।

सो०—नहीं रूप, देखो हरभजन ने कितने अच्छे फल धोये हैं ! मेरी तक खाने की तबीयत होती है। अच्छा, ये लो अपने हाथ से तुम्हें अङ्गूर खिलाऊँ। देखो, ये अङ्गूर की कैसी छोटी छोटी गोलियाँ हैं ! [रूप को अपने हाथ से अङ्गूर खिलाते हैं। प्रसन्नता से] एक बार बड़े दिनों में मैंने कलक्टर साहब को डाली दी। डाली में बड़े अङ्गूरों को देख को कलक्टर साहब के मुँह में पानी आ गया। झट से तीन चार अङ्गूरों को मुँह में डालते हुए साहब ने कहा—वेल सेठ साहब, तुम गोली में हामरा शराब लाया है ! [दोनों हँसते हैं। हरभजन भी मुस्कराता है। हरभजन से] हरभजन, तुम बाहर बैठो। डॉक्टर साहब आयें तो ख़बर देना। अच्छा ? तुम बहुत अच्छा फल धोते हो। समझे ?

हर०—बहुत अच्छा सरकार ! [बाहर जाता है।]

सो०—क्यों रूप, कल से तुम्हारा जी कुछ हलका है ?

रूप०—[मलीनता से] नहीं बाबू जी !

सो०—[खड़े होकर] कैसे होगा ! हिन्दुस्तानी जिस्म में अंग-रेज़ी दवा कितना फायदा कर सकती है ? वह तो मन नहीं मानता, नहीं तो वैद्यों को बुलाता। और अगर वैद्य बेवकूफ न होते तो इन डॉक्टरों का मुँह भी न देखता। मुँह देख कर सौ बार नहाता।

[हरभजन का प्रवेश।]

हर०—सरकार, डॉक्टर साहब आये हैं !

सो०—कौन डाक्टर ?

हर०—डाक्टर दास गुप्ता।

सो०—और डाक्टर कपूर नहीं आये ?

हर०—अभी तो नहीं आये सरकार !

सो०—[चिढ़कर] अभी क्यों आयेंगे ? अच्छा बुलाओ इन्हीं को।

[हरभजन जाता है।]

सो०—रूप, तुम साफ़-साफ क्यों नहीं कह देते कि इस दवा से फ़ायदा नहीं होता। देख रहा हूँ, दस रोज़ से तुम बीमार हो। तबीयत में दवा से कुछ तो आराम होना चाहिए।

[हरभजन के साथ डॉक्टर दास गुप्ता का प्रवेश।]

सो०—आइये डॉक्टर साहब, आज फिर टेम्परेचर नाइण्टी नाइन प्वाइण्ट सिक्स है !

दास०—[टेबुल पर अपना बैग रखते हुए] की हुआ ? धिरे-धिरे

तो नारमाल होगा। हाम बोला जे दावाई ठिक टाइम पर देनेशे शाब ठिक होने शकेगा। [रूप से] तुम दवा पिया ?

रूप०—हाँ, डॉक्टर साहब, आठ बजे और बारह बजे की दो ख़ुराकें तो पी चुका।

सो०—हरभजन, ये घड़ी ठीक मिली है या नहीं ?

हर०—सरकार, अनवरसीटी के घटे से मिलाई थी।

सो०—यूनीवर्सिटी के घंटे से ! वह घड़ी अक्सर बन्द भी तो हो जाती है। आज शाम को स्टेशन से मिलाकर लाओ, समझे !

हर०—बहुत अच्छा सरकार !

दास०—[अपने कोट से घड़ी निकालकर] नहीं, टाइम ठिक है। तीन आधा बाजता है।

रूप०—कितना, साढ़े तीन ?

दास०—हाँ, येई बात।

रूप०—इस वक्त रोज़ मुझे हरारत बढ़ जाती है।

सो०—हाँ, डॉक्टर साहब, ज़रा मेहरबानी करके देखिए। मेरे रूप को बड़ी तकलीफ है।

दास०—आच्छा, हम अबी टम्परेचर लेते। [थर्मामीटर रूप के मुँह में लगाते हैं।] तूमरा हाथ देखाओ।

[रूप हाथ आगे बढ़ाता है। डा० साहब नाड़ी देखते हैं। आधे मिनट तक निस्तब्धता रहती है। सोमेश्वरचन्द्र कभी रूप और कभी डाक्टर के मुँह की तरफ देखते हैं। आध मिनट बाद डा० साहब थर्मामीटर रूप के मुँह से निकाल कर देखते हैं।]

सो०—[उद्विग्नता से] क्यों डॉक्टर साहब, कितना टेम्परेचर है!

दास०—[थर्मामीटर को हरभजन के हाथ में देते हुए] खबरदारी से धो लाओ [सोमेश्वर से] जासती नेई। दुइ प्वाइण्ट बाड़ा हय। पाल्श (Pulse) तो ठिक है। वेशी दिन नाहीं लागेगा।

सो०—डॉक्टर साहब, दस दिन तो हो गये इस फिकर में।

दास०—शेठ साहब, घाबराने से की होता? [रूप से] रूप साहब, तूमरा पेट का दरद?

रूप०—वह तो वैसा ही है। और कुछ बढ़ता नज़र आता है।

सो०—[रुखता से] देखिए डॉक्टर साहब, दस दिन से आप लोग दवा कर रहे हैं। मैं तो फिकर से मरा जा रहा हूँ। कुछ आराम ही नहीं होता! इधर इनकी पढ़ाई अलग चौपट हो रही है। इसी साल एम० ए० में बैठना है। ऐसी बीमारी में कहीं एम० ए० हो सकता है? आप लोग मेहरबानी कर के इन्हें जल्द अच्छा कर दें। आप तो देखते हैं, मैं रुपया पानी की तरह बहा रहा हूँ। फिर भी तबियत वैसी की वैसी।

दास०—डॉक्टर कोपुर आया था?

हर०—नहीं सरकार, अभी तक तो नहीं आये?

दास०—अबी जाके बोलाओ।

हर०—बहुत अच्छा सरकार! [जाता है।]

सो०—इसीलिए मैंने दो दो डॉक्टरों को तकलीफ दी कि वे आपस में समझ-बूझ कर दवा करें। [इस भय से कि कहीं डाक्टर साहब को बुरा न लग जावे।] आप तो अपनी-सी बहुत करते हैं, लेकिन तबीयत

को जाने क्या हो गया कि आप जैसे डॉक्टरों की दवा भी फायदा नहीं पहुँचाती ! मै तो चिन्ता से डाक्टर साहब, आधा हो गया हूँ। चाहता था, रूप की पढाई ख़त्म हो तो इनको काम सौंप कर आराम से शिव शङ्कर का भजन करता लेकिन पूर्व जन्म के पाप कहाँ जायँगे ? चिन्ता-चिन्ता-चिन्ता घर छोडकर ऋषिकेश चला जाऊँ तो सब ठीक हो जाय।

दास०—आप रिशीकेश केयों जाता ? रूप बाबू आभी ठिक होता।

सो०—नहीं डाक्टर साहब, अब मैं दुनिया से ऊब गया। बाप-दादों की कमाई हुई लाखों रुपये की जायदाद अब मुझसे नहीं सँभलती। दिनभर बकझक करता हूँ, लेकिन कुछ होता नहीं। सँभालें आपके रूप बाबू। मैं अगर जायदाद ख़राब कर दूँ तो ईश्वर के सामने और अपने बाप दादों के सामने क्या मुँह दिखाऊँगा ? अपनी बेवक़ूफी से अगर रुपया बरबाद करूँ तो रूप बाबू का हक़ मारता हूँ। अब तो जितनी जल्दी हो मैं इस दुनिया से उठ जाऊँ तो अच्छा। शिवशङ्कर ! मुझे उठा लो। [शङ्कर जी के चित्र की ओर देख कर हाथ जोडते हैं।]

दास०—अरे, आप कैशी कोथा बोलते ? आप तो वहुत होशियार है। हाजार का लाख तो आप ही किया है। अबी तो आपका उमर बहूत है।

सो०—अजी सब हो चुका। आप मेरे रूप को अच्छा कर दें। आप शहर के मशहूर डॉक्टर हैं, इसलिए आपके हाथ मे रूप को सौंपा है।

[हरभजन के साथ डॉक्टर कपूर का प्रवेश ।]

हर०—सरकार, डॉक्टर साहब रास्ते ही मे मिल गए ।

क०—गुड ईवनिङ्ग सेठ साहब, गुड ईवनिङ्ग डॉक्टर, आइ वाज़ इन दि वे । क्या तबीयत कुछ ज़्यादा ख़राब है ? [रूप की ओर देख कर] गुड ईवनिङ्ग मिस्टर रूप ।

[गुड ईवनिंग का शिष्टाचार ।]

क०—क्यों, क्या तबीयत कुछ ज़्यादा नासाज़ है ?

दास०—नाही, शेठ शाहब घाबराते ।

क०—मिस्टर रूप, यू आर क्वाइट आल राइट । टेम्परेचर लिया ?

दास०—हाँ, दुइठो प्वाइट जासती राहा । नाइन्टी नाइन प्वाइंट एट् ।

सो०—लेकिन आपकी दवा पीते हुए इस बुख़ार को बढ़ना क्यों चाहिए ?

रूप०—और पेट का दर्द भी कुछ ज़्यादा मालूम होता है ।

क०—हाँ, बढ़ना तो नहीं चाहिए । इसकी दवा दे दी गई थी ।

रूप०—वह दवा चार बजे सुबह की थी । मुझे नींद आ गई थी । वह ख़ुराक मैं पी नहीं सका ।

दास०—आछा-आछा, जागाना ठिक नेई था । शो तो ठिक राहा ।

क०—लेकिन जागने पर तो मेडिसिन लेनी चाहिए थी । मेडीसिन निगलेक्टेड, इम्प्रूवमेण्ट निगलेक्टेड ।

सो०—ख़ैर, डाक्टर कपूर, अब दवा दे दीजिए।

क०—आप फिजूल घबराते हैं। आपके घबराने से रोगी की तबीयत और भी ख़राब होगी।

सो०—तो आप जल्दी से जल्दी इसे अच्छा कर दें।

क०—आप इतमीनान रखिए। हैव फेथ आन अस। डाक्टर दास गुप्ता को कितना तजरुबा है। एल० आर० सी० पी० हैं। इन्होंने हज़ारों केसेज़ अच्छे किए हैं। शहर की आधी ज़िन्दगी इन्हीं के हाथों में है और मैं भी १२ वर्षों से मरीज़ों को देखता आ रहा हूँ। इनकी तबीयत आज नहीं तो दो तीन दिनों में अच्छी हो जायगी।

सो०—देखिए, जब आप ऐसा कहते हैं तो मुझे इतमीनान होता है।

क०—होना चाहिए। आप चिन्ता कर ख़ुद अपनी तबीयत ख़राब न कर लें! आप ये सब बातें हम लोगों पर छोड़ दीजिए। आप अपना काम देखिए। मैं तो देखता हूँ कि आप पिछले ७-८ दिनों से अपना सारा काम छोड़े हुए बैठे हैं।

सो०—मैंने तो बहुत से ज़रूरी काग़ज़ भी नहीं देखे।

क०—तो फिर उन्हें देखिए। अपना सब काम चलाइए। जब आपने मिस्टर रूप को हम लोगों के सुपुर्द कर दिया है तो अब आप बिलकुल बेफिकिर हो जाइए। हम लोग कुछ बाक़ी उठा न रखेंगे।

दास०—ठिक बोला, जे हाम लोग बाकी उठाय न राखेंगे।

क०—और फिर मिस्टर रूप की बीमारी भी कोई ऐसी सीरियस

नहीं है। आप अपने काम का इतना हर्ज क्यों करते हैं? सुना है, आपने दूकान जाना भी छोड़ दिया है।

सो०—हाँ, जाया भी तो नहीं जाता।

क०—नहीं, जाइए अवश्य, दुनिया में तो बीमारियाँ चला ही करती हैं। कोई हमेशा तो तन्दुरुस्त रहा नहीं, कभी न कभी तो बीमार पड़ेगा ही। आप दूकान जाइए, अपना काम देखिए। फिर थोड़ी देर बाद आप आ जाइयेगा।

दास०—हाँ, फिर आने शाकता।

सो०—अच्छा तो ठीक है। अगर मेरा रूप अच्छा रहे तो मैं क्यों इतना परेशान होऊँ।

क०—तो सेठ साहब, परेशान होने की कोई बात नहीं है।

सो०—तो फिर मैं कुछ काग़ज़ देख लूँ? सात रोज़ से देखने की फ़ुरसत भी नहीं मिली। दलाल लोग यों ही भटक कर चले जाते हैं। कभी यहाँ तक चक्कर लगाते हैं।

क०—आप तो उनसे दूकान पर ही निबट लिया कीजिए।

दास०—हाँ, आप जाने शाकते। हम डॉक्टर कोपूर शे वातें करूँगा।

क०—हाँ, तब तक हम लोग म्युचुअल कसल्टेशन करते हैं। आप अपना काम कीजिए। जिस नतीजे पर पहुँचेंगे आपको बतला देंगे।

सो०—हाँ, डॉक्टर साहब, आप लोग ख़ूब होशियारी से कंस-

ल्टेशन कर लें। मुझे भी इतमीनान हो जायगा। अच्छा, तो मैं जाऊँ ?

क०—हाँ, ज़रूर। आप इतमीनान से अपना काम कीजिए।

दास०—जोरूर, काम तो जोरूर देखने होता भाई।

सो०—अच्छा तो रूप, मैं थोड़ी देर के लिए काम देख आऊँ ? चला जाऊँ ? ये दोनों डॉक्टर तुम्हारे पास हैं।

रूप०—हाँ, बाबू जी, जाइए।

सो०—अच्छा रूप, तो मैं जाता हूँ।

[रूप को देखते हुए सोमेश्वर का प्रस्थान। एक क्षण बाद फिर लौटते हैं।]

सो०—देखिए डॉक्टर साहब, आप लोग ख़ूब ध्यान से कंसल्टेशन कीजिए। मुझे अपने रूप के बारे में पूरा इतमीनान हो जाय।

क०—हम लोग बड़ी सावधानी से कंसल्टेशन करेंगे।

दास०—फारक पाड़ने नेई शाकता।

सो०—अच्छा रूप, मैं अभी आता हूँ। जाऊँ ?

रूप०—जाइए बाबूजी। मेरी तबीयत यों बुरी नहीं है।

सो०—वाह, रूप, जब मैं तुम्हारे मुँह से यह सुनता हूँ तो मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहता। अच्छा, जाता हूँ।

[रूप की ओर देखते हुए सोमेश्वर का प्रस्थान। भीतर से सोमेश्वर की आवाज़—]

अरे हरभजन, ओ हरभजन, अरे चल इधर, काम वग़ैरह कुछ देखना भी है या नहीं ? ये कमबख़्त नौकर मेरे किसी काम के नहीं हैं।

[हरभजन भीतर ही—आया सरकार, आया ।]

क०—पूअर फ़ादर ! कितने अफ़ैक्शनेट फ़ादर हैं ।

दास०—वहूत । रूप को तो वहूत भालो वाशते ।

रूप०—सचमुच मुझको बहुत प्यार करते हैं । रात दिन मेरी चारपाई के पास ही रहते हैं । ऐसे फादर बहुत कम होंगे ।

क०—आप उनके इकलौते बेटे भी तो हैं ?

दास०—हाँ, एकाकी ।

रूप०—फिर जब से मेरी माँ की डैथ हुई है तब से तो और भी इनका प्रेम मुझ पर बढ़ गया है ।

दास०—ऐशा होना शाभाविक है ।

क०—यू मस्ट रेसपेक्ट पूअर फ़ादर इम्मेसली । मिस्टर कपूर, ही इज़ वरदी आव दैट् ।

रूप—दैट आइ डू ।

दास०—बिलकूल ठिक है ।

क०—अच्छा तो मै, मिस्टर रूप, तुम्हें ज़रा एग्ज़ामिन कर लूँ ?

रूप०—ज़रूर ।

[कपूर अपना स्टेथेसकोप निकाल कर रूप के चेस्ट को जाँचते हैं और अँगुली से चेस्ट की आवाज़ लेते है ।]

दास०—हाम तो काल जाँच लिया था । कोई ऐशा बात नेई !

क०—हाँ, कोई ऐसी बात तो नहीं है । अच्छा, दर्द कहाँ होता है ?

रूप०—पेट में ।

दास०—दारद किश जागा शे निकालता ?

क०—याने किस जगह से शुरू होता है ?

रूप०—[पेट पर अँगुली रख कर उसे घुमाते हुए] यहाँ से उठ कर ऊपर की तरफ जाता है, डॉक्टर साहब !

क०—कल क्या खाया था ?

रूप०—वही जो आपने बतलाया था। फ्रूटजूस और बारली वाटर।

दास०—पेट कुछ भारी मालूम देता ?

रूप०—कुछ कुछ।

क०—मोशन हुआ था ?

रूप०—कुछ-कुछ।

दास०—ये दर्द 'कालीक' होने शाकता।

क०—लेकिन 'कालिक' समझना कठिन है। 'कालिक' में तो बावेल्स में ग्रिपिंग पेन होना चाहिए। ऐसा तो नहीं है ?

रूप०—कभी कभी ऐसा नही होता।

क०—शार्प और स्पेसमोडिक पेन तो नहीं है ?

रूप०—नहीं।

क०—तब 'स्पेसमोडिक कालिक' नहीं है। कै की तबीयत तो नहीं होती ?

रूप०—नहीं।

क०—तब 'बिलियस कालिक' भी नहीं है। अच्छा, खट्टी डकार तो नहीं आती ?

रूप०—नहीं।

क०—तब 'फ्लेटुलेंट कालिक' भी नहीं।

दास०—आच्छा, पेट के अन्दर जोलान तो नाहीं मालूम देता ?

रूप०—नहीं।

क०—तब 'इन्फ्लेमेटरी कालिक' भी नहीं है। रात में दर्द ज़्यादा रहता है कि दिन में ?

रूप०—रात में बढ जाता है। पेट में मरोड़ सी होती है।

क०—क़ब्ज़ से हो सकती है। 'एक्सीडेंटल कालिक' हो सकता है।

रूप०—नहीं खाया तो कुछ जाता नही। खाता ही नहीं, क़ब्ज़ कहाँ से होगा ?

क०—खाया न जाय तो क्या क़ब्ज़ न होगा ?

दास०—आच्छा, पेट दाबाने शे दारद हालका पड़ता ?

रूप०—कुछ-कुछ। रात में तो पेट के बल ही सोता हूँ।

दास०—[हाथ पर हाथ मार कर] ओ ! बीमारी को धार लिया। आब केधर जाता है। 'इन्फ़्लेमेटरी कालिक' तो नाहीं है।

क०—फिर 'कालिक' का कौन-सा टाइप हो सकता है डॉक्टर ? कुछ सोच सकते हैं ?

दास०—आच्छा मिश्टर रूप, ये दारद डाओने शाइड हाय या बायाँ शाइड ?

क०—आइ मीन, राइट आर लेफ़्ट साइड ?

रूप०—राइट साइड।

क०—[सोचते हुए] लेकिन डॉक्टर, फीवर भी तो है। अगर 'इन्फ्लेमेटरी कालिक' नहीं है तो फीवर तो 'कालिक' में हो ही नहीं सकता।

दास०—लेकिन जाशती फीभर तो नाहीं है। नाइटी नाइन प्वाइट शिक्श, क्यों मिश्टर रूप ?

रूप०—नाइटी नाइन प्वाइट एट्।

दास०—ओ एक ही हाय ! देखूँ तूमरा पेट [पेट देखते हैं।] ओ, वावेल्श ठिक काम नेई किया। डाओने तरफ एबडोमेन टेण्डर हाय। 'एक्शीडेण्टल कालीक' होने शाकता।

क०—लेकिन डॉक्टर, मैं आपसे डिफर करता हूँ। फ़ीवर होने से 'इन्फ्लेमेटरी कालिक' के सिम्पटम्स हो सकते हैं।

दास०—लेकिन पेट मे जोलान तो नाहीं है। शीरफ़ फीवर होता हाय।

रूप०—हाँ, फ़ीवर तो हमेशा रहता है।

दास०—आछा तो 'हेपेटिक' होने शाकता। गाल-डक्ट में श्टोन होने शाकता।

कपूर—ओ यस, यही हो सकता है। नाऊ आइ कम्प्लीटली एग्री विद् यू। यही है, 'हैपेटिक कालिक' है।

दास०—देख के हाम मालूम कार लिया। जोदि 'एक्शीडेण्टल' नेई तो 'हैपेटिक' तो होने होगा। तूम हामको फीभर का याद दीलाया तो हाम वोल दिया जे 'हैपेटिक कालीक' ही होने शाकता। उशमें हालका फीभर होने होता, डाक्टर कोपूर।

क०—ठीक है, तब तो परगेटिव मेडीसंस देना ही नहीं चाहिए।

दास०—ओ नो। ऊहेन कालीक रान्श इन्द्र शाच काडिशाश पारेगेटिव शूड नाट बी गिउहेन। [रूप से] मिश्टर रूप, पेन दो तारा होता। ईन्पलेमेटरी दावाने शे वाढ़ता, इरीटेटीभ दावाने से घाटता। ये दारद कोल्ड, रियूमेटिजम, आर इनडाइजेशन शे होने होता। जोदि जाइंट मे होता तो गाउट आर टुबरकुलार भी होता। खाली पेट में होने शे एशीडिटी आर डिशपेपशीया होने होता। शारे वादन में होने शे ईन्फ्ल्यूएञ्जा। शारे वादन में होता?

रूप०—जी नहीं, सिर्फ पेट में।

दास०—तो तिन तारा का दारद होने शाकता! [अपनी अँगुलियों पर गिनते हुए] एक्शीडेंटल होने शाकता, इन्फ्लेमेटरी होने शाकता आर हैपेटिक होने शाकता। हम शोचता जे हैपेटिक होने शाकता। शार ऊलियम मूर वोलता जे ऊहेन एभर पेन इज डेजिरस देयर इज जानरली फिभर।

क०—तो फिर हम लोग बगल के कमरे में डिसाइड करें क्या ट्रीटमेंट होना चाहिए।

दास०—हाँ, चोलिए।

[जाने को उद्यत होते हैं।]

रूप०—[आग्रह से] नहीं डाक्टर साहब, आप लोग यहीं डिसाइड कीजिए कि आप लोग मेरा ट्रीटमेंट कैसा करेंगे।

दास०—तुम 'नारभस' तो नाहीं होगा?

रूप०—मैं बच्चा तो हूँ नहीं। एम० ए० में पढ़ता हूँ। मेरी तो आप लोगों की बातों में दिलचस्पी ही बढ़ रही है।

क०—आलराइट, डाक्टर, यहीं डिसाइड करें। कोई ऐसी बात तो है नहीं। मिस्टर रूप इज़ एन् एज्यूकेटेड यङ्ग मैन।

दास०—ओ कोई बात नेईं। डिशाइड कारने शाकते।

क०—ठीक है, तो इनका एलमेंट 'हैपेटिक कालिक' है। [सोचते हैं।]

क०—लेकिन डॉक्टर, अगर 'हैपेटिक कालिक' होने से गाल डक्ट में स्टोन है तब तो ऑपरेशन करना होगा।

रूप०—[घबड़ा कर] क्या आपरेशन ?

क०—हाँ, अगर 'हैपेटिक कालिक' है तो ऑपरेशन तो करना ही होगा। क्यों डॉक्टर ?

दास०—जोरूर, 'हैपेटिक' का शराल दवाई नाहीं है। ऑपरेशन कारने होता।

रूप०—[अपने स्थान पर ही कुछ विचलित होकर] ओह, ऑपरेशन !

दास०—हाँ, ऑपरेशन, आप डारते क्यों ?

रूप०—क्या बिना ऑपरेशन के अच्छा नहीं हो सकता।

दास०—जाब हैपेटिक होता तो ऑपरेशन जोरूरी काराना होता, भाई।

रूप०—ओह, मुझे छोड़ दीजिए। आप लोग जाइए। मैं यूँ ही मर जाऊँगा। ओह, ऑपरेशन ! ऑपरेशन !!

क०—आप ऐसी बातें क्यों करते हैं? सेठ सोमेश्वर साहब ने कहा है कि आपके अच्छा करने में कोई बात उठा न रक्खी जावे।

रूप०—ओह, अब तो मैं बे-मौत मरा।

क०—आप इतना क्यों घबराते हैं मिस्टर रूप? देखिए, आप पढ़े-लिखे आदमी हैं। आपको इतना 'नरवस' होना अच्छा नहीं मालूम देता। ऑपरेशन कितनी अच्छी चीज है। जो बीमारी हजार दवाओं से अच्छी न हो बस ऑपरेशन से 'ओपन' कर सब चीज आँख से देख कर खट खट अच्छा कर दिया। और अब तो दुनिया में ऑपरेशन से क्या क्या नहीं होता!

दास०—आपरेशन शे एक लाग निकाल के फेंक देता। शीरफ एक लाग से आदमी जिन्दा रहने शाकता। ओ बाबा! आपरेशन शे हड्डी नीकाल के लोहा लगा देता।

क०—यू शुड अण्डरस्टैण्ड आल दिस मिस्टर रूप।

रूप०—यह तो सब ठीक है, लेकिन आपरेशन टल नहीं सकता?

दास०—हाम टालने शाकता, लेकिन बीमारी बाढ़ने का बात होगा। आपको पारेशानी भी होगा और टाका भी खरच होगा।

क०—आपरेशन में थोड़े दिनों की तकलीफ़ होगी फिर जिंदगी भर के लिए आराम। आप आपरेशन करा लीजिये।

रूप०—ओह, अब क्या करूँ!

क०—आपके करने की कुछ ज़रूरत नहीं। मैं सेठ सोमेश्वर साहब को सब कुछ समझा दूँगा। वे सब बात समझ जायँगे। जिस बात में आप जल्द अच्छे होंगे, उसी की सलाह वे भी देंगे।

रूप०—मैं अपनी जान ख़तरे में नहीं डालना चाहता।

क०—ख़तरे मे कैसे? हम लोग तो हैं। अगर बीमार लोग यही समझने लगें तो फिर हम लोगो का प्रोफ़ेशन तो गया।

रूप०—तो क्या अपना प्रोफेशन चलाने के लिए आप लोग ऑपरेशन करते हैं?

दास०—जे बात नेई। हाम तो दुनियाँ को आराम देने आपरेशन कारते।

रूप०—मुझे ऐसा आराम नहीं चाहिए।

क०—तो फिर आप बीमार रहिए। पढ़ना-लिखना चौपट कीजिए। अपने फादर को 'वरीड' रखिए। पैसा फूँकिए और डाक्टरों की फ़ीस दीजिए।

रूप०—मैं इस सबके लिए तैयार हूँ।

क०—फिर ऑपरेशन के लिए तैयार क्यो नहीं हैं?

रूप०—यों ही।

क०—माफ़ कीजिए, हम लोग आपकी बात नहीं मान सकते। अगर पेशेण्ट के कहने पर डाक्टर चले तो वह डाक्टरी कर चुका।

दास०—हाँ, शो तो नाहीं होने शाकेगा।

क०—सुनिए, मिस्टर रूप, या तो आप हम लोगो की बात मान ऑपरेशन कराइए या फिर हमारा 'गुडबाई'। हम सेठ सोमेश्वर साहब से सब कुछ कह देंगे। फिर आप जानिए और आप का काम। ताज्जुब की बात है कि आप इतने एज्युकेटेड होकर इस तरह नासमझी की बातें करते हैं। आइ एम रीयली वैरी सॉरी।

रूप०—तो बिना अपरेशन के काम नहीं चलेगा।

क०—नही। अगर आप हम पर फैथ नहीं रखते तो फिर आप से कुछ नही कहना।

दास०—आप शे की बोलूँ रूप! हाम नेई जानता था जे आप इतना काचा आदमी हाय!

रूप०—आपरेशन कराना ही होगा?

क०—हम लोगों की राय में।

रूप०—अच्छा, तो फिर एक बात·· ··· ···[रुक जाता है।]

दास०—बोलिए, बोलिए, रुक केयों गिया?

क०—हाँ, कहिए न?

रूप०—देखिए···[फिर रुक जाता है।]

क०—क्या···?

रूप०—बाबू जी कहाँ हैं।

क०—वे काम करने गये हैं। शायद दूकान पर।

रूप०—नहीं, देख लीजिए।

क०—[पुकार कर] जगदीश।

जग०—[आकर] जी।

क०—सेठ साहब इस वक्त कहाँ हैं?

जग०—दूकान की तरफ गए हैं। अभी दस मिनट में आने को कह गए हैं।

रूप०—देखो जगदीश, तुम भी जाओ।

क०—इसे क्यों भेज रहे हैं? किसी काम की ज़रूरत हुई तो?

रूप०—नहीं इस वक्त कोई काम नहीं है। देखो जगदीश, बाबूजी से कहना कि आते वक्त ताज़ी मोसम्मी लेते आवें।

जग०—बड़े सरकार ने कहा था, यहीं रहना।

रूप०—नहीं, तुम जाओ। क्या तुम मेरे काम पर नहीं जाओगे?

जग०—नही सरकार, जाऊँगा।

रूप०—तो तुम जाओ।

जग०—बहुत अच्छा! (जाता है।)

क०—बहुत फल तो रक्खे हैं! अङ्गूर, अनार वगैरह।

रूप०—नहीं, मेरी मोसम्मी खाने की इच्छा है।

क०—अच्छा, वह क्या बात है जो आप कहना चाहते थे?

रूप०—जगदीश गया?

क०—[सामने की खिड़की के समीप जाकर देखते हुए] हाँ, वह जा रहा है।

रूप०—देखिए, डॉक्टर साहब मैं एक बात कहूँ।

दास०—बोलिए ना।

क०—आप तो ड्रामा कर रहे हैं।

रूप०—ड्रामा नहीं। देखिए, मैं बिलकुल बीमार नहीं हूँ।

[उठकर बैठ जाता है।]

क०—[आश्चर्य] अच्छा!

दास०—[आश्चर्य से] अच्छा?

रूप०—देखिए डॉक्टर साहब, मैं बिलकुल बीमार नहीं हूँ। टेम्प-

रेचर तो यूँ ही बिस्तर मे पड़े-पड़े हो गया। यों मैं बिलकुल अच्छा हूँ।

क०—फिर यह बीमारी का स्वाँग क्यों रखा है ? सब को फ़िकर में डाल रक्खा है ?

दास०—ये की बात भाई ? ऐशा तो हाम शुना नेई।

कपूर—गुड फ़ार नथिंग। सब को मुफ़्त की चिन्ता !

रूप०—डॉक्टर साहब, मैं ही बहुत चिन्ता में हूँ। [उठ खड़ा होता है।] शरीर से मैं बिलकुल अच्छा हूँ, लेकिन मन से बहुत दुखी, बहुत दुखी !

क०—अच्छा !

दास०—ये की बात ?

रूप०— सुनिए, आप लोग मेरी दवा क्या करेंगे ? [टहलता हुआ] कोई बीमारी भी हो ! मैं ऑपरेशन की बात सुन कर अपने भेद को नही छिपा सका, आपसे कहना ही पड़ा। मुफ़्त में मैं अपना पेट नहीं कटवा सकता !

कपूर—अरे, तो हम लोगों को क्या मालूम !

रूप०—मैने बीमारी का बहाना किया है, यह जानते हुए भी कि बाबूजी का बहुत रुपया ख़र्च हो रहा है। लेकिन मै लाचार हूँ। कोई दूसरा रास्ता ही नहीं है।

क०—ऐसी क्या बात है, आख़िर ?

रूप०—मैं वह नही बतलाना चाहता।

दास०-बाबा, हाम तो ये रोकम केश कोभी नाहीं देखा।

रूप०—तो अब देख लीजिए।

क०—लेकिन आप बतलाना क्यों नहीं चाहते ? बीमार हैं, बीमार नहीं भी हैं। फ़िकर है लेकिन फिकर की बात आप छिपाना भी चाहते हैं। यह बात क्या है ?

रूप०—इसलिए कि आप लोग कोई मेरी मदद नहीं कर सकते।

क०—यह आप कैसे कह सकते हैं ?

दास०—बाबा, हामरा अकिल तो काम नेई करता।

क०—हम लोग पेशेएट की मदद हर प्रकार से करने के लिए तैयार हैं। मालूम तो होना चाहिए।

रूप०—तो क्या आप मदद कर सकते हैं ?

क०—क्यों नहीं। अगर हमारे बस की बात हो तो क्यों नहीं करेंगे ?

रूप—नहीं, आप मदद नहीं कर सकते।

क०—तो फिर कोई बात नहीं, हम लोगों को अब यहाँ से चले जाना चाहिए।

रूप०—अच्छी बात है, फिर मुझे भी लेटना चाहिए; बीमार होना चाहिए।

दास०—की बोलते रूप बाबू ! ठेकाने की कोथा बोलो।

रूप०—डॉक्टर साहब, मैं बिलकुल सच बोल रहा हूँ। मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

दास०—ताभी तो हम लोग आया।

रूप०—आप लोग तो ऑपरेशन करने आये हैं। यह दवा नहीं है।

क०—मैं भी कुछ नहीं समझ सकता। अच्छी बात है, तो हम लोग सेठ साहब से क्या कहें?

रूप०—यही कि रूप बहुत बीमार है। उसकी दवा होनी चाहिए।

दास०—ये तूम की बोलता बाबू?

रूप०—ठीक-ठीक तो कह रहा हूँ कि मैं बीमार हूँ।

क०—अभी आप कह रहे थे कि मैं बीमार नहीं हूँ।

रूप०—हूँ भी और नहीं भी। आप लोग मेरी सहायता कर ही नहीं सकते।

क०—कुछ कहेंगे भी आप!

रूप०—अच्छा तो सुनिये········[सोचता है।]

[कपूर और दासगुप्ता सुनने के लिए शान्त मुद्रा में होते हैं।]

रूप०—कहूँ········[रुक कर] अच्छा जाने दीजिए, मुझे बीमार ही रहने दीजिए!

दास०—आप बोलते केयों नाहीं? हाम आपनी दावा में कोई बात ऊठा नाही राखेंगे!

रूप०—दवा की बात नहीं है, डॉक्टर साहब।

क०—तो फिर बतलाइए न।

रूप०—आप···कु···सु···म···को जानते हैं?

क०—कुसुम···?

दास०—कु··शू··म ?

रूप०—हाँ, कुसुम, ओह कितना अच्छा नाम है ! [दास और कपूर एक दूसरे को देख कर मुस्कुराते हैं ।]

रूप०—आप लोग मुस्कुराएँ नहीं । मैं सच कहता हूँ ··।

क०—क्या ?

रूप०—इसी तरह मेरी सहायता करना चाहते हैं ?

क०—मैं इन बातों में क्या सहायता कर सकता हूँ मिस्टर रूप ?

दास०—हाम कि कोरेगा बाबा ! ऐशा डॉक्टरी हम नाहीं किया ।

रूप०—अब कीजिए । अभी आप लोगों के सामने लम्बी ज़िन्दगी है ।

क०—ठीक है, लेकिन अब मैं जान गया कि यह बीमारी हम लोगों से नहीं सँभल सकती ।

रूप०—अब जब आपने यह बात मुझसे कहला ली है तो पूरी ही सुनाऊँगा और आपको मेरी मदद करनी ही होगी ।

क०—आलराइट, दैन गो ऑन ।

रूप०—तो आप कुसुम को नहीं जानते ? [कुर्सी पर बैठता है ।]

क०—नहीं, मैं नहीं जानता ।

रूप०—जिसने म्यूज़िक कानफ्रेंसमें पार साल फर्स्ट प्राइज़ पाया था ।

दास०—हैं, वो तो हामरे घर के पाश रेहता ।

क०—अच्छा ! मुझे भी याद पड़ता है कि मैंने उसका गाना सुना था । उसने वायलीन भी अच्छा बजाया था शायद ।

रूप०—हाँ, वायलीन, वायलीन । लाजवाब बजाती है वह ।

क०—इसमें क्या शक है?

रूप०—मैं...मैं चाहता हूँ कि...।

क०—क्या चाहते हैं आप...?

रूप०—मैं चाहता हूँ कि वह वायलीन फिर एक बार बजावे...।

दास०—तो बीमार काहे को पड़ा?

रूप०—मैं चाहता हूँ कि वह बीमारी में एक बार मुझे अपना वायलीन सुनावे। एक बार वह मुझे अपना संगीत सुना जाय, ख़ास कर मेरी बीमारी मे...।

क०—लेकिन आप बीमार तो नहीं हैं।

रूप०—नहीं हूँ, लेकिन हूँ, शारीरिक रूप से नहीं, मानसिक रूप से।

क०—तो आप सिर्फ गाना सुनना चाहते हैं या और कुछ···?

रूप०—मैं पहले गाना सुनना चाहता हूँ डॉक्टर! [उठ खड़ा होता है।] ओह, जब वह गाती है तो मालूम होता है जैसे दुनिया फूल की तरह नरम होकर हिल रही है। एक-एक राग जैसे अङ्गूर की बेल है जिसमें मिठास के फल झूल रहे हैं। उसके वायलीन के तार जैसे जीती जागती भावना की लकीरें हैं, जो दुनिया को लपेट कर ख़ुद उसमें लिपट जाती हैं। [भावावेश में आँखें बन्द कर लेता है] वह संगीत···।

दास०—ये कोविता है बाबा!

रू०—उसका ध्यान ही कविता है डॉक्टर! आप लोग शायद यह नहीं समझ सकते। चीर-फाड़ करने वाले सुन्दरता को क्या समझें?

वे तो सुन्दरता को काट कर रख देना जानते हैं। हड्डी जोड़ने वाले कहीं दिल जोड़ सकते हैं ?

क०—तो क्या आप समझते हैं कि डॉक्टरों के पास दिल नहीं होता ? वे क्या पत्थर के बने हुए हैं ?

रूप०—दिल होता है, लेकिन उस दिल में सिर्फ़ ख़ून ही रहता है। उसमें होना चाहिए एक पूरी दुनिया, जिसमें—जिसमें हँसी का बसन्त आता है और आँसू की बरसात होती है। जिसमें किसी से मिलने की चाँदनी निकलती है और न मिलने का अँधेरा होता है।

दास०—ई बात हाम नाहीं समझा। फिर शे बोलो !

रूप०—क्या बोलूँ, जो लोग प्रेम की गर्मी को थर्मामीटर से नापते हैं उनसे क्या बोलूँ ?

क०—तो क्या आप समझते हैं कि हम लोग प्रेम करना जानते ही नहीं ?

रूप०—प्रेम ? प्रेम की जब उमङ्ग उठती है तो आप लोग उसे लोशन से धो डालते हैं। और वह लोशन से धुलते-धुलते चाहे जो कुछ रह जाय, प्रेम नहीं रह पाता। आप लोगों के दिमाग़ में किसी सुन्दरी को देख कर उसके 'स्केलिटन' की भावना आ जाती होगी। उसकी बोली सुनते समय आप लोग 'ओबुला' की बात सोचते होंगे। उसके केशों के नीचे 'स्कल' होता है, यह आप लोग सोचते हैं या नहीं ?

क०—आपकी बात सुन कर तो मुझे अपनी पुरानी दुनिया याद आ रही है। मैं आपके दर्द को महसूस कर रहा हूँ।

रूप०—तब तो आपको मुझसे सहानुभूति होनी चाहिए। और मेरी सहायता करनी चाहिए।

क०—ज़रूर, ज़रूर। अच्छा, अब आप अपनी पूरी बात बतलाइए।

दास०—फिर तो हम भी शुनूँगा।

रूप०—देखिए, मै जो बीमार बना था, वह इसलिए कि वह आकर मुझे गाना सुना जाय। मैं ऐसी परिस्थिति लाता कि उसे आना ही पड़ता। वह आती और मुझे गाना सुनाती।

क०—फिर आपने ऐसा क्यो नही किया ?

रूप०—आप लोग मेरा ऑपरेशन करने लगे ! मेरे पेट काटने की बात सोचने लगे तो मुझे असली बात ज़ाहिर कर ही देनी पड़ी।

दास०—शँगीत शुनने शे की होता ?

रूप०—मुझे शान्ति मिलती। मैंने तो उसे जान ही लिया है। अगर वह भी मुझे पहचान सकती !

क०—तो आप चाहते हैं कि यह पहचान दूर तक बढ़ जाय ?

रूप०—शायद।

क०—तो मालूम होता है कि आप उसे चाहने लगे हैं।

रूप०—मुमकिन है।

क०—चाहने का मतलब क्या है ?

रूप०—चाहने का मतलब ? एक आदमी क्यों हँसता है, क्यों रोता है ? उसे प्यास क्यों लगती है ? ठण्ड में वह गरम कपड़े क्यों पहनता

है ? गर्मी में वह पङ्खा क्यों करता है ? उसे भूख क्यों लगती है ?

दास०—ये तो नेचर का नेशेशिटी है।

रूप०—मेरी यही नेसेसिटी है डॉक्टर ! मैं इससे ज़्यादा क्या बतलाऊँ कि मेरे दिल में उसकी चाह है। मुझे उसके रूप की बीमारी है !

क०—ठीक है, मै समझ सकता हूँ मिस्टर रूप ! एक्सीडेंट देखिए, रूप को रूप की बीमारी है !

रूप०—इसे यों कहिए तो ठीक है कि रूप रूप की बीमारी में कुरूप हो रहा है।

दास०—[महज़ कुछ बोलने के लिए] तो उशको चिकेन शूप पीने होगा।

रूप०—डॉक्टर साहब, आप बहुत बड़े डाक्टर हैं।

क०—अच्छा तो ये बात है।

रूप०—हाँ, डॉक्टर कपूर यही मेरी चाह है।

क०—लेकिन इस चाह का नतीजा ?

रूप०—अगर मुमकिन हो सका तो······

क०—आप शादी करेंगे उससे ?

रूप०—मुझे कोई आपत्ति न होगी।

क०—तो आप तो शादी यूँ ही कर सकते थे। उसके लिए इतने बीमार पड़ने की ज़रूरत ही क्या थी।

रूप०—डॉक्टर, मैं ऐसी शादी नहीं करना चाहता। अन्धों की तरह। एक तो मैं शादी करना ज़रूरी समझता ही नहीं, ऐसा नेचर

भी कहता है; लेकिन चूँकि मैं इण्डिया में हूँ, शादी की रस्म होनी ही चाहिए। मैं समाज की परवाह नहीं करता। मैं सिर्फ ख़्याल रखता हूँ अपने ओल्ड फ़ादर का। अगर मैं शादी न करूँगा तो उनको हद दर्जे का सदमा पहुँचेगा। मैं उनका इकलौता बेटा हूँ। उनकी सारी उम्मीदें मुझ पर ही हैं। ऐसी हालत में प्रेम और विवाह को मुझे आपस में मिला देना है। यों मैं इन दोनों को अलग-अलग रखने का पक्षपाती हूँ।

क०—यू आर डूइङ्ग ए ग्रेट सेक्रिफ़ाइस दैन ?

रूप०—यही समझिए ! उधर देखिए। [लेनिन के चित्र की ओर संकेत करता है।] लेनिन ! इसने मैरिज इन्स्टीट्यूशन की यूज़लैसनैस को समझा है। मैं तो कहता हूँ कि इस बदलते हुए ज़माने में शादी से अच्छे सिटीज़न पैदा न होंगे। प्रेम से अच्छे सिटीज़न पैदा होंगे। और इण्डिया अभी रशा नहीं हो सकता। मैं प्रेम और विवाह में समझौता करूँगा।

दास०—अब हाम शमझा जे तूम बहूत होशियार है रूप बाबू !

रूप०—इसलिए डॉक्टर साहब, मैं चाहता हूँ कि कुसुम भी धीरे-धीरे मुझे अच्छी तरह समझ जाय। मैं तो उसे अच्छी तरह समझता ही हूँ। बिना आपस में एक दूसरे को समझे शादी शादी नहीं, वह दिल की शादी नहीं, दुनिया को दिखलाने की शादी है। अगर वह भी मुझे पहचान सकी तो मेरी इच्छा पूरी होगी।

दास०—लेकीन उशका माँ-बाप तो नेई है। उशका मामा जोरूर है।

रूप०—इसीलिए मुझे उसके साथ विवाह करने में आसानी होगी। क्या डॉक्टर साहब, आप मेरी मदद नहीं कर सकते? क्या आप सिर्फ शरीर ही अच्छा कर सकते हैं, हृदय अच्छा नहीं कर सकते?

क०—[सोचते हुए] आपने कैसी समस्या हम लोगों के सामने रक्खी है, कुछ समझ में नहीं आती!

दास०—तो जाब शेठ शाहब पूछेगा तो हाम ये बोल देगा जे रूप बाबू बीमार नेई है।

रूप०—कोई बात नहीं। आप मेरी इतनी लम्बी कहानी सुन कर भी कुछ नहीं समझ सके, तभी तो मैं कहता हूँ कि डाक्टर लोग प्रेम की गर्मी को थर्मामीटर से नापना जानते हैं। उनके पास दिमाग़ होता है, दिल नाम की कोई चीज़ नहीं होती।

क०—सचमुच डाक्टर दास, यह बात मेरी समझ में आ रही है।

दास०—तुम भी रूप बाबू की तारा बोलते डॉक्टर कोपूर?

क०—नहीं डॉक्टर, रूप बाबू के कहने में सचाई है।

रूप०—और देखिए डॉक्टर दास गुप्ता, बाबू जी से ऐसा कहकर आप मुझे बहुत सदमा पहुँचायेंगे। आप मेरा नुक़सान तो करेंगे ही आप अपना भी बहुत नुक़सान करेंगे।

दास०—की रोकम?

रूप०—आपकी इतनी लम्बी फ़ीस बन्द हो जायगी।

दास०—लेकीन जब आप बीमार नेई तब हाम फोकट में फीश केयों लेगा?

रूप०—फोकट क्यों ? आप अपनी दवा कीजिए। आप सिर्फ ऑपरेशन भर न करें। मै बीमार बना रहूँ, आप मुझे अपनी दवा दीजिए। मैं दवा पियूँ या फेंक दूँ आप दवा दीजिए। आप को दवा की क़ीमत मिलेगी और आपके आने की फीस !

दास०—लेकिन शेठ शाहब का टाका तो खारच होता !

रूप०—वह रुपया मेरा है। मैं ही तो उनका 'एअर' हूँ ? वे मेरे लिए ही तो अपना रुपया छोड़ेंगे ? मेरे सिवाय उनका और कौन है ? माँ हैं ही नही। सारे घर में मैं अकेला हूँ उनका इकलौता लड़का, जिसके लिए वे जान देते हैं।

क०—मिस्टर रूप, आपकी सारी बातें मेरी समझ में आ गई। मैं आपसे पूरी सिमपैथी रखता हूँ। लेकिन जब आप बीमार नहीं हैं तब आपके फादर से फ़ीस लेना मेरा कानशस अलाऊ नही करता।

रूप०—अगर आपकी सिमपैथी मुझसे है तो आपको मेरी मदद करनी चाहिए। आपका मुझ पर बहुत एहसान होगा। उसे मैं शायद ज़िन्दगी भर न भुला सकूँ। डॉक्टर दास गुप्ता, मै उसे आजीवन नहीं भुला सकूँगा।

दास०—शो तो ठिक हाय।

क०—अच्छा, अगर मदद की जाय, तो किस तरह की मदद की जाय ?

रूप०—देखिए, आप बाबू जी से यह सब कुछ न कहें। आप यही कहें कि रूप बीमार है। उसकी दवा होनी चाहिए। फिर बीमार रह कर मैं कोई रास्ता निकालूँगा कुसुम से मिलने का। आप लोग

दवा कीजिए और अपनी फीस लीजिए। जितने दिनों तक मेरी दवा होगी उतनी ही ज़्यादा फ़ीस आपको मिलेगी।

दास०—ऐशा तो मुझशे नाही होने शाकेगा।

रूप०—न सही, लेकिन सोच लीजिए। डॉक्टर दासगुप्ता, ऐसे मौक़े बार बार नहीं आते। डॉक्टर कपूर, ऐसे मौक़े बार-बार नहीं आते।

दास०--शो तो ठिक है। तो इश पर भी काशाल्टेशान कार लो डॉक्टर।

क०--मैं तो तैयार हूँ। अगर इससे रूप बाबू का भला होता है तो मुझे कोई आबजेक्शन नहीं है! अभी तक हम 'बाडी' का ट्रीटमेंट करते थे, अब 'माइंड' का करेंगे। हम लोग फीस लेंगे तो क्या दवा न देंगे? लेकिन असली बात तो आप किसी से न कहेंगे?

दास०—आप तो नाहीं बोलेगा?

क०—मैं क्यों कहने चला? मिस्टर रूपचन्द्र की इच्छा पूरी हो हम लोगों को ख़ुशी होगी।

दास०—हामरा भी ख़ुशी होगा। बाबा, पेशेण्ट आछा हो, हामरा तो ये ई बात।

रूप०--मैनी-मैनी थैंक्स डॉक्टर। आई शैल नेवर फारगेट युअर काइंडनैस। अच्छा तो मैं अब लेटता हूँ। आप बाबू जी से यही कहें कि तबीयत अभी थोड़े दिन और ख़राब रहेगी। ऐसी बीमारी इतनी जल्दी अच्छी नहीं होती। हाँ, एक बात अगर आप लोग कह सकें तो यह भी कह दीजिए कि इनको अच्छा करने के लिए सङ्गीत सुनना

बहुत ज़रूरी है। जब वे पूछेंगे कि कैसा प्रबन्ध करना चाहिए, तो आप कुसुम का नाम ले दीजिए। अगर आप यह कह सकें तो सारा मामला ही सुलझ जाय। और मैं इस बात के लिए तैयार हूँ कि आप बड़ी से बड़ी क़ीमत पर यह काम कर सकें।

दास०—जे कोई बात नेई। हामरा घर के पाश ओ रेहता है। हाम उशको बोल देगा जे तूमरा को बिमार का काष्ट दूर कारना ऊचित। ओ आ जाइगा।

रूप०—तो डॉक्टर साहब, आप मेरी यही दवा करें।

क०—ठीक है, आपने जैसा कहा, वैसा मैं सेठ साहब से कह दूँगा। आप कोई फिकर न करें।

रूप०—थैंक्स, तो मैं अब लेटता हूँ।

[रूपचन्द्र पलंग पर मुस्कुराते हुए लेटता है और फिर कमर तक चादर ओढ़ लेता है।]

क०—तो अब कालिक की दवा तो न दी जाय ?

रूप०—देखिए, अगर आप शर्बत बना कर भेजेंगे तो मैं पी लूँगा। और कोई दवा भेजने पर मैं उसे पीने के बहाने तकिये पर या नीचे गिरा दूँगा। दवा की क़ीमत तो मिलेगी ही। शर्बत के लिए क़ीमत कुछ बढा लीजिये, फीस बदस्तूर। और देखिए, मेरे बिल्कुल अच्छे हो जाने पर प्रेज़ेन्ट !

क०—बिल्कुल अच्छे हो जाने पर……

रूप०—आप बिल्कुल अच्छे हो जाने का मतलब समझते हैं ?

क०—हाँ, समझता हूँ।

दास--[हँसते हुए] फीर 'हैपैटिक कालीक' का ऑपरेशन नेहीं होगा ?

रूप—अब आप मेरे दुश्मन का ऑपरेशन करे ।

क०—फिर मिस्टर रूप, अब आप को दर्द कहाँ होता है ?

रूप०—[हँस कर] पेट के कुछ ऊपर जहाँ दिल है ।

[सब हँसते हैं । जगदीश आता है ।]

जग०—डॉक्टर साहब, सरकार आ रहे हैं।

क०—हाँ, हम लोगों ने कंसल्टेशन भी कर लिया ।

दास०-- बहुत आछा कासल्टेशान !

[सोमेश्वर का मुसम्मी का थैला लेते हुए प्रवेश ।]

सो०--[आते ही] रूप, मैं आ गया । मैं आ गया । [कपूर से] कहिए डॉक्टर साहब, आप लोगों ने कसल्टेशन किया ? कैसा है मेरा रूप ? कब तब अच्छा हो जायगा ? कोई ख़ास बात तो नहीं है ?

क०—नहीं, कोई ख़ास बात नहीं है । हम लोगों ने काफ़ी कंस-ल्टेशन किया । रूप बाबू की तबीयत ख़राब ज़रूर है, लेकिन कोई ज़्यादा ख़राब नहीं है ।

दास०--फ़िकर का ज़ोरुरत नेई, शीगेर आछा होगा । थोरा दीन लागेगा । कोई बात नेई ।

सो०—[शान्ति की साँस लेकर] ओह डाक्टर, अब मुझे सच्ची शान्ति मिली । आप लोगों ने सचमुच मुझको बचा लिया । नहीं तो रूप की चिन्ता मुझे खाये जाती थी । अब बहुत अच्छा है । [मोसम्मी की गठरी पर दृष्टि जाती है ।] देखिए, मैं अपने रूप के

लिए कैसी अच्छी-अच्छी मोसम्मी लाया हूँ। विल्कुल ताज़ी। [हाथ में एक मोसम्मी लेते हुए] वाज़ार से अपने हाथ से चुनकर। रूप, देखो ये मोसम्मी। अब तुम विलकुल अच्छे हो गए। डॉक्टरों ने एक आवाज़ से कह दिया कि कोई वात नहीं। [कपूर से] डॉक्टर साहब, आपने ध्यान से तो कंसलटेशन किया है? [डॉक्टर दास गुप्त से] डॉक्टर साहब, कोई वात रह तो नहीं गई? डिसकशन तो ठीक हुआ?

दास०—डीशकाशन तो वेशी हुआ, लेकिन वात ठिक है। फिकर केयों कारते? 'एक्शीडेंटल कालीक' में कोई बात नेई होता।

क०—हाँ, 'एक्सिडेंटल कालिक' में ज़्यादा घवड़ानानहीं चाहिए। पेशेंट के मन में शान्ति होनी चाहिए।

सो०—मैं तो रूप से कहता हूँ कि शान्त रहे। ख़ुशरहे। लेकिन वे हमेशा उदास रहते हैं। [मोसम्मी दिखला कर] रूप, ये मोसम्मी देखो, अच्छा हुआ तुमनें जगदीश से कहला भेजा कि ताज़ी मोसम्मी चाहिए। ये देखो मैं अपने हाथ से ताज़ी मोसम्मी लाया हूँ। ज़रा ख़ुश हो जाओ रूप, तुम्हारी मोसम्मी खोजने में ही तो थोड़ी देर लग गई, नहीं तो मैं और पहले आ जाता।

दास०—ओ कोई वात नेई।

क०—अच्छा हुआ, थोड़ी देर लग गई। क्यों रूप?

रूप०—हाँ, ताज़ी मोसम्मी खाने को मिलेगी।

सो०—मैं जानता हूँ, मेरे रूप को मोसम्मी बहुत अच्छी लगती है ये कमबख़्त नौकर क्या जाने कि मेरे रूप को क्या अच्छा लगता है।

लाते हैं अनार, अँगूर, केले। क्यों रूप, तुम्हे मोसम्मी अच्छी लगती है न ?

रूप०—हाँ, बाबू जी।

सो०—बस, तो तुम अब ख़ुश हो जाओ। अब तुम उदास मत रहना।

क०—यह उदासी एक तरह से दूर हो सकती है।

सो०—कैसे ? जल्दी बतलाइये डॉक्टर, मैं उसका इन्तज़ाम करूँगा।

क०—वह ऐसे कि इन्हें गाना सुनाया जाय।

सो०—तो घर में रेडियो तो है।

क०—रेडियो का गाना··· ···

दास०—जे बात तो हम शोचा नेईं।

रूप०—बाबूजी, रेडियो की आवाज़ मुझे अच्छी नहीं लगती। कुछ दबी हुई सी, मेटेलिक-सी होती है। और जब रेडियो सामने बजता है तो मालूम होता है जैसे मुरदे से आवाज़ निकल रही है। रेडियो से मुझे डर-सा लगता है।

सोम०—ना, ना ! तब रेडियो को फेंको। अरे जगदीश, जगदीश !

जग०—[आकर] जी सरकार।

सोम०—देखो मुनीम जी से कह देना कि आज से रेडियो नहीं बजायेंगे, जब तक कि मेरा रूप बीमार है। समझे। रेडियो बन्द करके रख दें।

जग०—बहुत अच्छा सरकार। [जाता है।]

सो०—ये रेडियो भी बहुत बुरी चीज़ है। सन्दूक के भीतर से आवाज़ आती है। सचमुच डरने की बात है। और जाने कैसी-कैसी आवाज़!

दास०—कोभी-कोभी शीटी भी मारता है!

क०—जैसे कोई स्पिरिट आवाज़ ऊँची-नीची करके चीख़ रही है।

सो०—इसके बारे में ज़्यादा बातें करना ठीक नहीं। मेरे रूप को डर लगता है।

रूप०—हाँ, बाबू जी।

सो०—डरने की कोई बात नहीं है रूप। इसीलिए तो मैं तुम्हारे साथ हरदम रहता हूँ। बीमारी में डर और भी बढ जाता है। जिस्म के साथ मन भी तो कमज़ोर हो जाता है! मैं इसीलिए तो तुम्हारे पास ही रहता हूँ।

हर०—[आकर] सरकार, बाहर कुछ दलाल आपसे मिलना चाहते हैं।

सो०—[झुँझला कर] मैं कहता था न कि दलाल आते होंगे। इन कम्बख़्तों को यही वक़्त मिलता है जब मैं अपने रूप के पास रहता हूँ। अभी दस मिनट के लिए दूकान पर था, तब नहीं आये। बेईमान कहीं के। जाके कह दो इस वक़्त मैं अपने रूप से बातें कर रहा हूँ। जानते नहीं रूप बीमार है!

हर०—सरकार, मैंने तो कहा था; लेकिन उन्होंने कहा कि ज़रूरी काम है।

सो०—मेरे लिए सब से ज़रूरी काम इस वक्त रूप की बीमारी को अच्छा करना है।

दास०—आप जाने शाकते।

सो०—अजी डॉक्टर साहब, आप भी क्या कहते हैं! मैं अपने रूप को इस वक्त नहीं छोड़ सकता। अभी आया हूँ और अभी चला जाऊँ? रुपये से रूप मुझे ज़्यादा प्यारा है। देखो हरभजन, उनसे कहो कि जब तक रूप अच्छा न हो जाय तब तक उनके आने की ज़रूरत नहीं है।

हर०—बहुत अच्छा सरकार। [जाता है।]

सो०—ये लोग भी अजीब खोपड़ी के आदमी हैं! जानते हैं कि मेरा बेटा बीमार है, तब भी दुश्मन की तरह सिर पर सवार रहना चाहते हैं।

क०—जाने दीजिए। हमें तो रूप को अच्छा करना है म्यूज़िक सुना कर।

सो०—हाँ तो डॉक्टर साहब, बतलाइए क्या करूँ? रेडियो रूप को अच्छा नहीं लगता। फिर क्या इन्तज़ाम करें? ग्रामोफ़ोन?

रूप०—बाबू जी, उसको सुनते-सुनते तो ऊब गया। वही गाना बार-बार सुनो। कालेज की पढ़ाई की तरह एक ही बात दस बार पढ़ो, दस बार रटो।

सो०—फिर बतलाइए, क्या किया जाय डाक्टर? सङ्गीत सुनाना बहुत ज़रूरी है डाक्टर?

क०—बहुत ज़रूरी है। अगर आप चाहते हैं कि मिस्टर रूप, जल्दी ही अच्छे हो जायँ।

सो०—मैं तो यही चाहता हूँ भाई। जल्दी से जल्दी यही चाहता हूँ। कोई अच्छा गाता हो उसे बुलाया जाय? क्या आप कोई ऐसा इन्तज़ाम कर सकते हैं डाक्टर कपूर?

क०—[सोचता हुआ] मैं? मैं क्या इन्तज़ाम करूँ? [सिर खुजला कर] हाँ, याद आया। पारसाल म्यूज़िक कानफ्रेंस में एक लड़की ने बहुत अच्छा गाना गाया था। उसे ही फर्स्ट प्राइज़ मिला था। सब से अच्छी गाने वाली वही ठहराई गई थी। ओह मारवलस! वायलीन भी फर्स्ट क्लास बजाती है। अगर वह गाना सुना सके तो ये बहुत जल्द अच्छे हो सकते हैं।

सो०—उसके सिवाय क्या और कोई अच्छा गाना नहीं गाता?

क०—यों गाने वाले तो बहुत हैं; लेकिन······

सो०—मेरे कहने का मतलब ये कि कोई अच्छा गाने वाला हो जो रात-दिन यहीं रह सके और मेरे रूप को जब चाहे तब अच्छा गाना सुना सके!

क०—हाँ, ये भी हो सकता है; लेकिन 'मेल वॉयस' 'फ़ीमेल वॉयस' को पा नहीं सकती। लड़की के गाने में जो मिठास होती है, वह किसी लड़के के गाने में हो नहीं सकती। वह तो गाना ही दूसरा हो जाता है।

दास०—'फीमेल वॉयेश' तो चोमत्कार होता। ओ बीमारी ठिक कारने शाकता।

क०—इसीलिए मैंने 'सजेस्ट' किया यों आप चाहे जिसको बुलावें।

सो०—नहीं डॉक्टर साहब, अगर आप किसी लड़की का गाना 'सजेस्ट' करते हैं तो उसी का इन्तज़ाम होगा। रूप की तबीयत अच्छी हो जानी चाहिए।

क०—इसीलिए मैंने कहा। म्यूज़िक इन ए फीमेल थ्रोट बिकम्स ए डिवाइन मिलोडी। मेरे कहने का मतलब यह है कि गाने की ब्यूटी तो 'फेयर थ्रोट' में ही है। यह आदमियों की ज्यादती है कि वे औरतों के इस आर्ट पर क़ब्ज़ा करें।

दास०—न्यू जानरेशान तो इश पर आन्दोलान कारने शाकता।

सो०—तो आप के कहने का मतलब कह है कि गाना किसी लड़की को गाना चाहिए!

क०—हाँ, मैं तो यही सोचता हूँ, यही समझता हूँ।

सो०—और गाना वही लड़की गाये? क्या नाम बतलाया उसका आपने डॉक्टर कपूर?

क०—[दास गुप्ता से] क्या नाम है डॉक्टर उसका?

दास०—ओ···नाम? नाम विस्रत हो गिया। [सिर खुजलाता है।]

रूप०—मैं गाना नहीं सुनूँगा। आप मेरे सिर में [कपूर की ओर देख कर] जवाकुसुम तेल ही डाल दीजिए। गाना-वाना छोड़िए।

क०—[जवाकुसुम नाम सुन कर] यह कुछ नहीं, अगर अच्छा

होना है तो जो मैं कहता हूँ, वह करेंगे या अपने मन की ? हाँ, याद आया, उसका नाम है कुसुम।

सो०--क्या नाम बतलाया कुसुम ? तो वह कैसे आवे ?

क०—कोई मुश्किल बात नहीं है। उसके माँ-बाप तो कोई हैं नहीं, उसके मामा को एक ख़त लिख दीजिए। वह चली आयेगी ! लिख दीजिए कि उसे ५) दिन मेहनताना दिया जायगा।

सो०—५) क्या, मैं अपने रूप को अच्छा करने के लिए १०) दे दूँगा ! उसके मामा का क्या नाम है डॉक्टर कपूर ?

क०—डॉक्टर दास गुप्ता जानते होंगे।

दास०—ओ, तो हामरे घर के पाश ही रेहता। उशका नाम है घोनपात चाँद।

सो०--ओ धनपतचन्द। मैं तो उनको जानता हूँ। मेरे दूकान से पहले उनका हिसाब-किताब रहता था। लेकिन उनका दिवाला निकल गया। अब तो बहुत गरीब हैं।

क०—अच्छा ये बात है ? तब तो ५), १०) दिन पर वे बहुत जल्द राज़ी भी हो जायँगे।

सो०—हाँ, राज़ी हो सकते हैं। बहुत ग़रीब हैं। मुझे तो बड़ा रञ्ज है उनके लिए, अपनी जात-बिरादरी के लोग हैं ?

क०—ओ, ऐसी बात है ? तब तो इस तरह आप अपने बिरादरी के एक भाई की मदद भी करेंगे।

सो०—हाँ, यह बात ठीक है। वाह डाक्टर साहब, क्या कहना है ! आपने कितना अच्छा नाम बतलाया ! वाह, क्या कहना है ! हमारा

काम निकलेगा और बिरादरी के एक भाई की मदद भी हो जायगी। कुसुम बेटी से कह दूँगा कि बेटी, तू इतना काम कर दे। इस को अपना ही घर समझ।

क०—हाँ, यही कहना चाहिए। आप एक ख़त अभी लिख दीजिए। [डाक्टर कपूर रूपचन्द की ओर देखते हैं।]

रूप०—बाबूजी, तबीयत तो कुछ सुनने की होती नहीं है, लेकिन अगर डॉक्टर कहते हैं तो सुनना पड़ेगा। ख़ैर, सुनूँगा।

सो०—रूप, तुम जल्दी अच्छे हो जाओगे। अच्छा, तो मैं अभी लिख देता हूँ। [पुकार कर] जगदीश, ओ जगदीश!

जग०—[आकर] कहिए सरकार!

सो०—ज़रा काग़ज़, क़लम तो ले आ।

जग०—बहुत अच्छा सरकार! [जाता है।]

दास०—नाम है धोनपात चाँद, लेकिन गोरीब हाय।

क०—लोग अपनी हसरत नाम रख के ही मिटा लेते हैं।

सो०—इनके बाप दादे तो अच्छे पैसे वाले थे, लेकिन अब दिन ख़राब आ गये।

[जगदीश काग़ज़, क़लम और दावात लेकर आता है।]

सो०—इन बेवक़ूफ़ों से कोई काम ही नहीं होता। काग़ज़ लाने को कहा तो इतना छोटा काग़ज़ लाया है! अरे, दवाई की पुड़िया नहीं बनाना, चिट्ठी लिखना है। कहाँ-कहाँ के जाहिल नौकर मेरे यहाँ इकट्ठे हुए हैं!

क०—हाँ, और देखिए सेठ साहब, आप अपने नौकरों पर नाराज़ बहुत होते हैं। इससे रूप बाबू की शान्ति में भी गड़बड़ होती है।

सो०—[घबड़ा कर] ओ, ऐसी बात है ? नहीं-नहीं, मैं नाराज़ नही होऊँगा। ओ जगदीश, अब मैं तुम लोगों पर नाराज़ नहीं होऊँगा, भाई।

जग०—बहुत अच्छा सरकार !

सो०—और देखो, हरभजन कहाँ है ? उससे भी कह दो कि अब मैं नाराज़ नही होऊँगा।

जग०—बहुत अच्छा सरकार !

सो०—अरे तो जाकर कहते क्यों नहीं ? यहीं खड़े-खड़े 'बहुत अच्छा सरकार !' बक रहे हो ! [जगदीश जाने को उद्यत होता है।] धीरे-धीरे क्यों जाते हो ? जल्दी जाओ। [चिढ़ कर] इन कम्बख़्तों के मारे [नाराज़ होने की भूल का स्मरण कर डाक्टरों की ओर देखते हुए]······अरे भैया जगदीश ! [जगदीश लौट कर आता है।] कह देना। इतनी जल्दी कहने की ज़रूरत नहीं है, भैया ! क्या करूँ, मेरी तो नाराज़ होने की आदत-सी पड़ गई है।

दास०—शो ठीक होने शाकेगा।

क०—बस, आप ख़त लिख दीजिए। गाने का इन्तज़ाम हो जायगा, इधर हम लोग साथ-साथ दवा देंगे तो बहुत जल्दी आराम हो जायगा।

रूप०—और क्यों डॉक्टर, पेट के दर्द में ऑपरेशन की ज़रूरत तो नहीं पड़ेगी ?

सो०—[चौंक कर] ऑपरेशन······!

क०—नहीं-नहीं, जब मन की बेचैनी मिट जायगी तो पेट का दर्द आपसे आप घट जायगा। आपके सङ्गीत सुनने का इन्तज़ाम जल्द ही होना चाहिए। सेठ साहब·········?

सो०—नहीं-नहीं, मै अभी ख़त लिखता हूँ। [बैठ कर घबराहट में ख़त लिखना चाहते हैं।]

दास०—मन में बेचैनी होने शे बिमारी बाढ़ने शाकता। बाढ़ेगा नेई। हाम दावा भी देगा।

सो०—बस दवा ही दीजिए। ऑपरेशन नहीं, गाना सुनाइए, दवा दीजिए, बस। डॉक्टर कपूर, घबराहट मे मुझसे ठीक नहीं लिखा जाता, आपही मेरी तरफ़ से लिख दीजिए।

क०—हाँ-हाँ, लाइए मैं लिख दूँ। [खत लिखते हैं।]

रूप०—यह सगीत क्या रोज़ रोज़ सुनना पड़ेगा बाबूजी, बड़ी मुसीबत है।

सो०—[बड़े प्रेम से] रूप, अच्छे होने के लिए सुनना ही पड़ेगा। सुन लो बेटा, डॉक्टर लोग कहते हैं। मैं कहाँ कहता हूँ? रूप, सिर्फ़ थोड़े दिन की बात है। फिर तो जिन्दगी भर के लिए अच्छे हो जाओगे।

रूप०—अच्छी बात है। बाबूजी, जैसा कहोगे, करूँगा। आपकी आज्ञा से बाहर तो जा ही नहीं सकता।

सो०—वाह, क्या कहना है। मेरा बेटा रूप! मेरा प्यारा बेटा रूप!!

क०—लीजिए, दस्तख़त कर दीजिए।

सो०—[पढ़ कर] वाह, कितना अच्छा लिखा है डॉक्टर! अब तो वह ज़रूर आ जायगी। [दस्तख़त करता है। कपूर से] वाह, कितना अच्छा लिखा—'मैं उसको अपनी ही बेटी समझूँगा।' आप बहुत अच्छी चिट्ठी लिखते हैं डॉक्टर साहब, क्या डॉक्टरी में ये भी बतलाया जाता है?

क०—[मुस्कुरा कर] ऐसी कोई बात नहीं। अच्छा, अब इसे भिजवा दीजिए।

सो०—वह मैं अभी भिजवाता हूँ। [पुकार कर] जगदीश!

जग०—[आकर] सरकार!

सो०—देखो, तुम लाला धनपतचन्द का मकान जानते हो?

जग०—जी सरकार! जिनका दिवाला निकल गया था?

सो०—हाँ, वही। जानते हो अब वे कहाँ रहते हैं?

जग०—जी, करनलगञ्ज में···

सो०—हाँ, वहीं! यह चिट्ठी उन्हीं के हाथमें देना। ज़रूरी है, समझे।

जग०—जी सरकार!

सो०—जाओ। [जगदीश जाता है।]

सो०—[सन्तोष की साँस लेकर] अब कहीं चैन मिला। अब मेरा रूप बहुत जल्दी अच्छा हो जायगा, क्यों डॉक्टर?

क०—अभी कुछ दिन तो लगेंगे, फिर बिल्कुल अच्छे हो जायँगे। बहुत दिनों के लिए!

दास०—[प्रसन्नता से] हामरा डॉक्टरी मामूली हाय !

सो०—नहीं डॉक्टर साहब, आप लोगों ने ही तो रूप को अच्छे करने की तरकीब निकाली है।

क०—अब रूप की बीमारी अच्छी हो जायगी।

रूप०—जब आप लोगों ने मुझे अच्छे करने में इतनी कोशिश की है तो ऐसा लगता है कि मैं अभी से अच्छा होने लग गया हूँ।

सो०—[प्रसन्नता से झूम कर] क्या कहना है ! क्या कहना है !!

[पर्दा गिरता है।]

३

१८ जुलाई की शाम

[जुलाई १९३७]

पात्र-परिचय

१—प्रमोद—राष्ट्रवाणी समाचार-पत्र का संवाददाता और उषा का पति। आयु २५ वर्ष

२—उषा—फ़ैशन की देवी । आयु २० वर्ष

३—अशोक—प्रमोद और उषा का मित्र, मुंसिफ़। आयु २३ वर्ष

४—राजेश्वरी—प्रमोद की आराधिका और उषा की सखी। आयु २१ वर्ष

५—पोस्टमैन।

इस नाटक का सर्व प्रथम अभिनय कायस्थ पाठशाला यूनीवर्सिटी कॉलेज के विद्यार्थियों द्वारा १९ दिसम्बर सन १९३८ में डा० ताराचन्द एम० ए०, डी० फ़िल् और लेखक के निर्देशन में हुआ। भूमिका इस प्रकार थी :

प्रमोद	...	श्री भुवनेश्वर प्रसाद
उषा	...	श्री हरिश्चन्द्र
अशोक	...	श्री मोहन लाल
राजे	...	श्री व्रजभूषण
पोस्टमैन	...	श्री अवध विहारी लाल

प्रमोद का मकान। समय ४ बजे शाम। कमरे में एक ओर महात्मा गांधी का चित्र, दूसरी ओर प्रमोद का फोटो। खूँटी पर कुछ कपड़े टँगे हुए हैं। समीप ही कैलेंडर, जिसमें १८ जुलाई का पृष्ठ। दरवाज़े के ऊपर क्लॉक।

प्रमोद इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से एम० ए० पास कर चुका है, पर उस पर फ़ैशन का प्रभाव बिलकुल नहीं है। वह साफ़ धोती और आधी बाँह की खद्दर की क़मीज़ पहने हुए है। पैर में स्लीपर्स। बाल बिखरे हुए।

वह 'राष्ट्रवाणी' के सम्पादन-विभाग में काम करता है, संवाददाता है। समाचार संग्रह करना उसका प्रधान कार्य है। इस समय भी वह टेबुल पर काम कर रहा है। रविवार का दिन है, पर उसके कार्य-क्रम में रविवार नहीं है। वह एक अंग्रेज़ी समाचार-पत्र को सामने रख कर उससे समाचार संग्रह कर रहा है। उसकी आयु पच्चीस वर्ष की है, पर कार्याधिक्य से वह अधिक आयु का जान पड़ता है। मुख पर जैसे ज़िम्मेदारी की गंभीरता है।

उसके समीप ही उसकी स्त्री उषा, बी० ए० लिपस्टिक लगा रही है। वह लगभग २० वर्ष की होगी। सुन्दर मुख और निखरा हुआ रंग। फैशन ने उस पर पूर्ण प्रभाव छोड़ रखा है। सलोने मुख पर क्रीम और उस पर पाउडर की चाँदनी। क्रेप की साड़ी और उस पर वाएल का जम्पर। कानों में नये डिज़ाइन के इयरिंग। कन्धे के समीप डायमंड ब्रूच। गले में सोने की चेन और स्वस्तिका। हाथ में सोने की गोलघड़ी और एक पतली रेशमी चूड़ी।

वह कुछ अस्थिर है। प्रमोद की नज़र बचाकर कमरे में लगी हुई क्लॉक देख लेती है, जिसमें चार बजने में २ मिनट हैं। प्रमोद अपने कार्य में लीन है। वह लिखने के बाद अपने समाचार-संग्रह का अवतरण पढ़ता है:—

भयंकर दुर्घटना!

आहत स्त्री-पुरुषों का लोमहर्षक चीत्कार!!

बिहटा—१८ जुलाई—अभी तक की ट्रेन-दुर्घटनाओं में सब से भयानक वह है जो पटना के पास बिहटा नामक स्थान में १७ वीं तारीख़ की रात्रि को घटी। पंजाब-हावड़ा एक्सप्रेस, जो पचास मील के वेग से जा रही थी, अचानक बिहटा के समीप उलट गई......[रुककर अंग्रेज़ी अख़बार की ओर देखकर] सम थ्री हन्ड्रेड पैसिंजर्स। हाँ, [फिर अपने अवतरण को पढ़ता हुआ] तीन सौ यात्री घायल हुए। सौ की तो मृत्यु ही हो गई। एंजिन रास्ते से टेढ़ा होकर नीचे गिर पड़ा जैसे कोई दैत्य ठोकर खाकर बैठ गया हो। चार-पाँच डिब्बे चूर-

चूर हो गए। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। कोई-कोई यात्री तो अङ्ग-विहीन हो गये। एक व्यक्ति के दोनों हाथ कट गये। उसकी नव-विवाहिता पत्नी · · [चार बजते हैं।]

उ०—[ऊबकर]—डैश इट् आल ! चार बज चुके, तुम्हें अपने काम से फुर्सत ही नहीं। [अस्थिर होकर घड़ी की ओर देखती है, फिर लिपस्टिक लगाने लगती है।]

प्र०—[पूर्ववत् ध्यान-मग्न]—उसकी नव-विवाहिता पत्नी को भी चोट लगी है, किन्तु वह साधारण है, पर उसे जो मानसिक चोट लगी है वह शारीरिक चोट से कितनी भयानक है ! उसका—

उ०—[हाथ की घड़ी की ओर देखकर] कब तक तुम्हारा काम समाप्त होगा ? कहीं बाहर निकलना भी चाहूँ तो मर के भी नहीं निकल सकती। चार बज चुके [खिन्न मुद्रा।]

प्र०—[उषा की ओर देखकर] तो क्या हुआ उषा ? जब काम सिर पर ही है तो चार बजें चाहे चौदह। उसे तो करना ही होगा।

उ०—[व्यंग्य से]—अच्छा काम करना होगा ! मैं तो मरी जा रही हूँ। चौबीसों घंटे घर में बन्द रहूँ। यह मुझसे नहीं होगा। कहाँ कालेज डेज़ में पिकनिक, मीटिंग्ज़, लेक्चर्स, सिनेमा और कहाँ यह क़ैदखाना ! ऐसे तो मैं मर जाऊँगी।

प्र०—तो तुम्हें बाहर जाने से रोकता कौन है उषा ? जाओ जहाँ जी चाहे। पार्क में घूमो, सिनेमा जाओ, यहाँ जाओ-वहाँ जाओ। मैं कब तुम्हें रोकता हूँ ? तुम्हारे आहार-विहार के जीवन में मैं रुकावट

नहीं डालना चाहता उषा। पर सोचो, मैं कैसे सब समय तुम्हारा साथ दे सकता हूँ ? 'राष्ट्रवाणी' न्यूज़ पेपर के आफ़िस में हूँ। रोज़ समाचार भेजना पड़ता है। अनुवाद करना पड़ता है। लेख लिखना पड़ता है अगर यह सब न करूँ तो काम कैसे चलेगा ? यह संवाद आज ही—अभी ही—शाम को भेजना है, नहीं तो कल अख़बार कैसे निकलेगा ? नये समाचार तो रखना ही होगा। बिहटा की ट्रेन दुर्घटना......।

उ०—[झुँझला कर]—ट्रेन दुर्घटना, भूकम्प, प्लेग ! क्या करूँ बैठकर रोऊँ ? संसार में तो यह रोज़ का काम है। इसके लिए कोई नहाना, खाना, सोना छोड़ दे ? तुम्हारे लिए भी यह रोज़ की बात है। सब को संडे की छुट्टी है, आप आज भी ख़च्चर की तरह जुते हुए हैं। और अगर तनख़्वाह भी अच्छी होती तो ग़नीमत थी...गिने हुए चालीस......शः [घृणा प्रदर्शन]

प्र०—[शान्ति से] उषा, तुम चाहे जो कुछ कह लो, पर अगर एम० ए० और एम० एस-सी० पास करने पर भी मैं ऊँची जगह न पा सका तो इसमें मेरा कितना दोष है ?

उ०—तो फिर किसका दोष है ? मेरा ?

प्रमोद—तुम्हारा क्यों ? अपने ग़रीब पिता के रक्त से बने हुए रुपयों की धारा यूनीवर्सिटी के आफिस में बहाकर मैंने डिगरियाँ मोल लीं। एम० ए० या एम० एस०-सी० के दो तीन अक्षर ही पिता जी की सारी कमाई को पी गए। पर इस सब के बाद मुझे मिला क्या ! कितनी जगह मैं घूमा। लखनऊ, रोरकी, जमशेदपुर—कितनी जगह

एप्लीकेशंस भेजीं, कितने साहबों से मिला पर एक ही उत्तर—जगह नहीं है।

उ०—सब के लिए जगह है केवल आपके लिए ही नहीं!

प्र०—[पूर्ववत् स्वर में] सुना था, अनएम्प्लायमेंट-कमिटी भी बैठी थी। सर सप्रू ने कितनों को क्रास-एग्ज़ामिन कर रिकमेंडेशंस भेजीं, पर उसका परिणाम क्या हुआ? कुछ नहीं। सब झूठ—ओफ, कहाँ कहाँ मैं नहीं गया? किस किस से मैंने प्रार्थना नहीं की? मैंने सब कुछ किया केवल आत्म हत्या नहीं की। यही मेरा दोष है!

उ०—आत्म-हत्या क्यों करते? पर यह चालीस की नौकरी तो गले से नहीं उतरती। तुम्हारे एम० ए० पास होने पर ही तो मेरे पिता ने तुम्हे पसन्द किया था। डिप्टी कलेक्टर होकर भी भूल कर बैठे। न जाने कितनों के लिए जजमेंट लिखते हैं, कितनों को क़ैद की सज़ा देते है। लोगों को सज़ा देते देते मुझे भी यह क़ैद की सज़ा दे बैठे!

प्र०—तुम स्वतंत्र हो उषा। अपने पिता को क्यों दोष देती हो?

उ०—हाँ, उन्हें क्या मालूम था कि पोस्ट-ग्रेजुएट महाशय डिप्टी कलेक्टर न होकर चालीस रुपये के सवाददाता होंगे! [घृणा से] सवाददाता—अन्नदाता—कितना फूहड़ शब्द है! डिप्टी कलेक्टर और सवाददाता! कल्पना और सत्य में कितना अन्तर है! जितना चारसौ और चालीस मे। चालीस में मेरा क्या होगा? पचास रुपये तो फ़ादर मथली मुझे जेब-ख़र्च के लिए देते थे। ऊपर से मैं अपने कम्फर्ट्स पर जो ख़र्च करती थी वह अलग। चालीस तो मेरा बैरा

पाता है। सुलेमान। चालीस में आप खाइएगा या मुझे खिलाइएगा ? चा···ली···स [सोचकर] सुनाजी, मैं घर जाऊँगी। पिता के यहाँ रेशम, यहाँ खद्दर के चिथड़े।

प्र०—उषा, इतनी अवहेलना क्यों करती हो ? आख़िर इसमें मेरा क्या दोष ? इतनी मेहनत करता हूँ, तब इतना मिलता है। यदि न करूँ तो इतना भी नसीब न हो। मैं यदि किसी तरह समय बरबाद करता, काम न करता, मेहनत न करता, तो तुम्हारा कहना ठीक था। पर मैं काम करते करते हैरान हूँ और तुम .खुश नहीं हो ? मैं जानता हूँ कि इन चालीस रुपयों में तुम्हारी एक साड़ी भी न आवेगी। तुम्हें तरह-तरह के ब्रूचेज़, जम्पर्स, हेयरपिन्स, इयररिंग्ज़ चाहिए। बी० ए० मे तो तुम न जाने क्या क्या पहनती थीं, जिनके नाम भी मुझे याद नहीं। पर यह सब कहाँ से लाऊँ ? मैं स्वयं लज्जित हूँ, पर बतलाओ मेरे लिए कौन सा रास्ता है ? मैं अपने ऊपर एक पैसा भी ख़र्च नहीं करता। सब तुम्हारा है—सब तुम्हारा है।

उ०—[व्यङ्ग से] "तुम्हें तरह तरह के ब्रूचेज, जम्पर्स, हेयर-पिन्स चाहिये।" तो इसके लिए मैं क्या करूँ ! क्या ये मामूली चीज़ें भी पहनना छोड़ दूँ ! कौन सा खर्च कम कर दूँ जिससे आपके चालीस रुपयों में बचत हो जावे ! फासफ़रीन न पिऊँ तो सर में दर्द हो जाता है ! फ़ोनटोना के बिना कमज़ोरी मालूम होती है। यार्डलें मुख पर न लगाऊँ तो मालूम हो जैसे बरसों से बीमार हूँ। कहिये तो सिरोलीन रोज़ ही खाना बन्द कर दूँ—पर उसके बिना कभी कफ से 'सफर' करती हूँ। या फिर 'क्रासवर्ड' भेजना बन्द कर दूँ ?

प्र०—कुछ मत बन्द करो। मैं मर कर भी जितना कमा सकूँगा, कमाऊँगा। मैं यदि अधिक नहीं कमा सकता तो मेरा दोष ?

उ०—आपका दोष न हो, पर मेरा मन तो यहाँ नहीं लगता। मैं अपने घर जाऊँगी।

प्र०—[स्नेह से]—मेरी उषा, यदि ख़ुशी से घर जा रही हो तो सौ बार जाओ, पर यदि नाराज़ी से जा रही हो तो मैं क्या करूँ ! दो महीने हुए मेरा तुम्हारा विवाह तो हो ही चुका है। भाग्य की ज़ंजीर ने हमें तुम्हें दो पेड़ो की तरह उलझा दिया है सब समय के लिए। यह स्थिति अब सुलझ नहीं सकती। यदि इसी में तुम्हारी प्रसन्नता है तो .....।

उ०—प्रसन्नता और अप्रसन्नता की बात नहीं है। मेरी माँ की तबीयत भी ठीक नहीं है। उन्हें देखने जाना है।

प्र०—[लाचार होकर] मेरे पास तो छुट्टी नहीं है। कहो तो ले लूँ जितने दिन की तुम कहो।

उ०—आपके कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मुझे किसी का एहसान नहीं चाहिये। मैं अशोक के साथ चली जाऊँगी। वे भी तो देहरादून के रहने वाले हैं।

प्र०—अशोक के साथ......?

उ०—हाँ, अशोक के साथ। आप उन्हें जानते होंगे। हम लोगों के साथ बी० ए० में पढते थे। जार्ज-टाउन में रहते थे। उनके पास क्रायसलर कार भी थी।

प्र०--हाँ, मै अशोक को तो अच्छी तरह से जानता हूँ। वे तो अपने साथ ही पढ़ते थे। बिलकुल अप-टु-डेट।

उ०—हाँ, मैं उन्हे अपना भाई ही समझती हूँ। वे आज ही शाम को पटने से आने वाले हैं। [क्लॉक की ओर देखती है।] शायद कल ही देहरादून चले जावें। सुनते हैं, मुंसिफी की जगह मिल गई है। वे अपनी जगह पर जाने से पहले देहरादून जाकर अपने पिता से मिलना चाहते हैं। न हो तो मैं भी साथ-साथ चली जाऊँ।

प्र०—क्या वे आज ही शाम को आने वाले हैं ?

उ०—हाँ, आज ही शाम को। क़रीब सवा चार बजे। [हाथ की घडी की ओर देखती है।] मुमकिन है आते हो। सवा चार बज चुके हैं।

प्र०—तुम उन्हें अपना भाई समझती हो ?

उ०—[कटुता से] हाँ, बहुत दिनों से। क्या तुम्हें कुछ संदेह है ? देहरादून मे भी वे मेरे घर अक्सर आया करते थे। मैं उनको 'अशोक भाई' कहा करती थी। यूनीवर्सिटी मे भी मै उन्हें...।

प्र०—ख़ैर, यह सब कहने की आवश्यकता नही। यदि तुम ठीक समझती हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुम अपनी स्थिति बहुत अच्छी तरह से समझती हो उषा ! फिर यदि माताजी की तबीयत ठीक नहीं है तो मुझे तो तुम्हारे जाने मे कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती।

उ०—[संतोष से]—बस ठीक है। मैं जल्द ही जाने का विचार करूँगी।

प्र०—अच्छा तो, अब मैं अपनी दुर्घटना का संवाद पूरा कर लूँ ?

उ०—[घड़ी देख कर] पर देखिए, मेरे सिर में अक्सर रात को जो दर्द हो जाया करता है उसके लिए डॉक्टर बैनर्जी ने यू० डी० क्लोन की पट्टी रखने के लिए कहा है। अच्छा हो, यदि आप उसे ले आवें। नहीं तो फिर दुकानें बन्द हो जावेंगी। काम तो आप रात में भी कर सकते हैं।

प्र०—यों तो दूकानें ६ बजे रात तक खुली रहती हैं, पर तुम्हारे कहने से मैं अभी ही लेता आऊँगा। फिर निश्चिंत होकर काम करूँगा। [उठ कर खूँटी से कोट पहनता है।]

उ०—और साथ में ज़ुकाम के लिए वैपेक्स भी।

प्र०—[कोट पहनते हुए]—और कुछ .....?

उ०—टाफीज़ और लेमन-ड्राप्स भी।

प्र०—[उषा की ओर देर तक देख कर] बहुत अच्छा।

[प्रस्थान]

[उषा क्लाक की ओर ध्यान से देखती है। फिर मोज़ा बुनती है। पर उसका मन नहीं लगता। एक किताब उठाकर पढना चाहती है। उसे भी छोड देती है। अख़बार उठाती है। पढ़ती है। चौंककर—]

अच्छा ! दस बालिकाओं से भरी नौका डूबी !

जबलपुर—१५ जुलाई—आज शाम को सग्राम-सागर के समीपवर्ती हरे-भरे पहाड़ी स्थान में स्थानीय स्कूल की कुछ छात्रायें पिकनिक के लिये गई थी। संध्या समय जब वे सग्राम-सागर पर नौका-विहार कर रही थीं उस समय अचानक मधु-मक्खियों का एक झुंड उस नौका पर टूट पड़ा। लड़कियों में हलचल मच गई और इससे नौका उलट

गई। सभी लड़कियाँ जल-मग्न हो गईं। अभी तक केवल दो पानी से बाहर निकाली जा सकी हैं। मल्लाहों द्वारा उनकी खोज हो रही है।

[सोचती है, गहरी साँस लेकर] अगर मैं भी उन्हीं के साथ डूब जाती !

[नैपथ्य में ओठों से सीटी बजा कर कोई अंग्रेज़ी स्वर में गाता है:—इफ यू वेयर दि ओनली गर्ल एंड आइ दि ओनली ब्वाय।

आइ दि ओनली ब्वाय।]

[दरवाज़े पर खट्खट् की आवाज़]

उ०—[भौंहें सिकोड़ कर]—कौन ?

स्वर—ए० के० गुप्ता, अशोककुमार !

उ०—[उल्लास से] अहः अशोक ! वेलकम !!

[अशोककुमार एम० ए० का प्रवेश। चौबीस वर्ष का सुन्दर नवयुवक। वेशभूषा में सुरुचि और कला। बाल ग्लिसरीन से सँवारे हुए। स्टार्च्ड कालर और फूल की तरह बो। मर्सराइज़्ड सूट। हलका रेशमी रुमाल हृदय की तरह पाकेट में रक्खा हुआ है। पेटेण्ट शू। व्यक्तित्व इतना ताज़ा जैसे वह अभी ही स्नान करके चला आ रहा है। क्लीन शेव। आँखों में रसिकता और ओठों में मुस्कान। हाथ में 'क्रेवन ए' सिगरेट का डिब्बा। आते ही कमरे में लेवेण्डर की ख़ुशबू फैल जाती है। आते ही उषा को देखकर—]

ओः मिसेज़ गुप्ता ! उषा ! मिस उषा ! यू-एस-एच-ए !

उ०—[उल्लास से उठकर]—अशोक ! अशोक !! काम्प्रेचु-लेशस !

अ०—[प्रसन्नता से] थैंक्स, उषा ! [हाथ मिलाते हैं ।] अच्छी तो हो ? हाऊ डू यू ?

उ०—हाँ, अच्छी हूँ किसी तरह । तुम तो अच्छे हो ? [बैठते हैं ।]

अ०—बहुत, बहुत अच्छा । उषा ! ओ० के० । अभी पटने से आ रहा हूँ । बिहटा गया था । दि प्लेस आव् डिसाज़्टर । ओफ़, अगर एक दिन पहले जाता तो मुमकिन था कि मेरा नाम भी उस लिस्ट में इनक्लुड होता । मैंने आज वहाँ के विकटिम्स को देखा । एक रोज़ पहले जाता तो लोग मुझे देखते ! [सिगरेट जलाता है ।]

उ०—कैसी बातें करते हो अशोक ? ईश्वर न करता तुम पर आँच आती ।

अ०—तुम्हारी 'बैस्ट विशेज़' कहाँ जातीं ? इसी से तो बच सका । वहाँ की तो बहुत पैथेटिक साइट थी !

उ० [दुःखित होकर] आँ, बहुत पैथेटिक साइट थी ? मैंने जब यह न्यूज़ सुना तभी फेंट हुई जा रही थी । अभी पाँच मिनट पहले मैं उसी दुर्घटना पर आँसू बहा रही थी । तुम तो उसे देख भी आए ! तो अभी ही आ रहे हो ? तुम्हारी राह बड़ी देर से देख रही थी । [घड़ी की ओर देखती है ।]

अ०—ऐसी बात थी ? थैंक्स । अभी शाम की गाड़ी से आ रहा हूँ । शायद कुछ लेट हो । मैंने तो तुम्हें लिख ही दिया था ।

उ०—हाँ, मैं जानती थी कि तुम आज शाम को आ रहे हो । अच्छा, कुछ जलपान ? चा ? मुझे ही अपने हाथ से तैयार करनी होगी । कोई नौकर तो—

अ०—ओः, तब तो और भी स्वादिष्ट होगी। ओ० के०। पर ठहरो, तकलीफ़ मत करो। गाड़ी से उतरते ही मैं फ़र्स्ट क्लास वेटिंग रूम में चला गया। मुँह धोया। फिर अच्छा नाश्ता करके आ रहा हूँ।

उ०—तब ठीक बात है। फिर मैं आपकी आवभगत भी तो नहीं कर सकती। बहुत बड़े आदमी अशोक की। मैं तो ग़रीब हूँ। और अशोक, तुम तो अब और भी बड़े आदमी बन गये, मुंसिफ साहब!

अ०—[गर्व से] बड़ा कब नहीं था उषा?, कालेज में भी बड़ा था। जार्ज टाउन में रहता था। मोटर पर रात-दिन सैर। सिनेमा। पैलेस का तो 'पास' ही मेरे पास था। इलाहाबाद जैसे सूखे शहर में भी मैं दो सौ फूँक देता था। जहाँ के लड़के फ़िलासफी या स्टैटिस्टिक्स की तरह ड्राइ हैं उस इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में भी मैं वसन्त की बहार देखता था। उषा, और बड़ा आदमी किसे कहते हैं? [सिगरेट का धुँआ ओंठ उचका कर छोड़ता है।]

उ०—[उल्लास से]—वास्तव में तुम बड़े आदमी हो अशोक! तब भी थे और अब भी।

अ०—और उषा! तुम कैसी होगई हो? दुबली-पतली, न ठीक हँस सकती हो। और ठीक रो भी सकती हो या नहीं! पगली लड़की! पहले तो नैशटरशम की तरह ख़ुशरंग, उषा की तरह सुसज्जित, ओस की तरह निर्मल थी, और—

उ०—[दुःखी होकर]—अशोक, कुछ मत कहो। अब मेरा जी मत जलाओ। मैं पानी से बाहर की हुई मछली हूँ। [आँखों में पानी]

अ०--[सान्त्वना देते हुए]—अरे तुम्हारी आँखों में पानी ! हुश्! अच्छी अच्छी उषा, मैं आया हूँ और ऐसी बात ? अच्छा प्रमोदजी कहाँ हैं ?

उ०—बाहर गये हुए हैं।

अ० [प्रसन्नता से]--क्या इलाहाबाद से बाहर ?

उ०--नहीं, शहर ही में।

अ०--अच्छा, कब तक लौटेंगे ?

उ०—एक आध घण्टे से पहले नहीं। चौक में उन्हें कुछ काम है।

अ०—कोई ख़ास ?

उ०—नहीं, यू० डी० क्लोन और वैपेक्स लाने के लिए।

अ०—क्यों, क्या उनकी तबियत ठीक नहीं है ?

उ०--नहीं ठीक है। मैंने ही भेजा है, मुझे ज़रूरत. . .

अ०--क्यों तुम्हें क्या हुआ ?

उ०--कुछ नहीं। [क्लॉक देखकर] तुमसे एकान्त मे मिलना चाहती थी !

अ०—[प्रशंसा से हाथ में हाथ लेते हुए] ओः उषा, तुम बड़ी अच्छी हो। तुम पहले भी अच्छी थीं, उसी तरह जिस तरह मैं पहले भी इतना ही अच्छा था। और उषा तुम्हें याद है ? उस दिन एल्फ्रेड पार्क के लॉन पर तुम बैठी थीं। मैं पास ही तुम्हारी केश-राशि के खुले हुए छोर में कोमल कलियों को क़ैद कर रहा था। सुन्दरता को सुन्दरता से बाँध रहा था। लेडी आव् दि नाइट की सुगन्धि जैसे तुम्हारे सामने अपने को हवा मे खो देना चाहती थी। यूक्लिप्टिस के

पेड़ के पीछे से चाँद ने हमे देखा था और उषा, उस समय...... ।

उ०—[खोकर] अशोक......!

अ०—क्या कहूँ उषा ! तुम क्या थी और अब क्या होगई ? जैसे ओस को किसी ने फूल से उठाकर काग़ज़ पर बहा दिया ! इन्द्र-धनुष को काले बादल में लपेट दिया ! तितली के पखों पर कीचड़ लगा दिया !

उ०—[उद्विग्न होकर]—कुछ मत कहो अशोक !

अ०—क्यों न कहूँ उषा ? मैं तो जैसे स्वप्न देख रहा हूँ । तुम्हारी प्रभा खोई देखकर मैं ख़ुद खो गया हूँ ! मेरे पिता ने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया जिस प्रकार तुम्हारे पिता ने तुम्हारे साथ । उनके रूढ़िगत होरोस्कोप के जजाल ने तो हम दोनो का बलिदान कर दिया । आज तुम्हें पाकर मैं कितना निहाल होता ! इसे तुम क्या जानो उषा ? आज तुम मेरे धन पर ही नहीं मुझ पर भी शासन करतीं तो मैं कितना धन्य होता ! मै तुम्हें न पाकर कितना दुखी हूँ यह उस पेड़ से पूछो जो वसत आने से पहले ही काट दिया गया !

उ०—[मलीन होकर] और अशोक, तुम यदि मेरे हृदय को देखो तो मालूम होगा कि वह आँसुओं से बना हुआ है । मैंने कितनी ही रातें यों ही बिता दी हैं, जागते हुए ; जैसे किसी फूल को सुरक्षित रखने के लिए सन्दूक़ में वन्द कर दिया गया है । यह मेरी दशा है ! क्या इसका कोई उपाय नहीं है अशोक ?

अ०—(स्वतन्त्रता से)—है न । मेरे साथ चलो । फिर देखा जायगा ! मैंने तो तुम्हें पत्र में लिख दिया था कि आज शाम को आ

रहा हूँ और रात ही देहरादून चला जाऊँगा। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो देहरादून चलकर कुछ दिनों रहो। फिर देखा जायगा। हम लोग मसूरी ही रहेंगे। वहाँ तुम्हारे माता पिता तो होंगे नहीं—[सिगरेट का धुँआ उड़ाता है।]

उ०—मैंने तो आज ही संवाददाता महोदय से कह दिया है कि मैं देहरादून जाना चाहती हूँ। मेरी माँ की तबीयत अच्छी नहीं है।

अ०—(प्रसन्न होकर)—अच्छी बात बनाई, माँ की तबियत अच्छी नहीं है! अब इसमें तो किसी तरह की रुकावट हो ही नहीं सकती। अच्छा तो उन्होंने क्या कहा ?

उ०—उन्होंने कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं है ?

अ०—बड़े उदार हैं! तुम्हारी तबीयत के ख़िलाफ़ नहीं जाते!

उ०—हाँ, हैं तो बड़े सीधे। सदैव मुझे प्रसन्न रखने की चेष्टा करते हैं। पर ज़रा रोमेण्टिक नहीं हैं। गंभीर हैं, जैसे सारे संसार की समस्या इन्हें ही सुलझानी है। और सुनो, मैंने कह दिया कि मैं अशोक के साथ जाऊँगी।

अ०—अच्छा ? वे चौंके नहीं ?

उ० – पहले तो कुछ चौंके। बाद में मैंने पुरानी याद दिलाई कि तुम जार्ज टाउन में रहते थे। बड़े सरल और अच्छे थे। साथ ही माँ की बीमारी का ज़िक्र किया तो स्वीकृति दे दी।

अ०—वाह बड़े सज्जन हैं! अच्छा तो फिर चल रही हो ?

उ०—कब ?

अ०—आज रात। मुझे अभी जाना है। दो एक चीजें सत्य-भामा के लिए लेनी हैं। उन्हें ख़रीद कर लौटूँगा। संवाद-दाताजी से भी मिल लेना ज़रूरी है। मैं करीब बीस-बाईस मिनट बाद आऊँगा। मेरे मित्र की कार है ही। कुछ देर नहीं लगेगी। तुम उनसे निश्चय कर रखना। मैं उनके सामने ही स्वीकृति ले लेना चाहता हूँ। मैं तुम्हें उनके सामने ही ले जाऊँगा ! फ्राम अण्डर दि लाफुल गार्डियन-शिप। समझीं ? मैं अभी लौटकर आता हूँ। फिर आज की रात हम लोगों के जीवन की मधुयामिनी होगी उषा ! थैंक्स बी टु दि गाड्डेस वीनस !

उ०—पर अशोक, मुझे कुछ भय लगता है !

अ०—हॅऋ्! एक ग्रेजुएट लेडी और भय ? उषा, क्यों स्वयं अपने एज्यूकेशन को लज्जित करती हो ? शर्मीली लड़की ! [उत्साह देते हुए] उठो, चीयर अप् ! मेरे साथ चलो ! बुरा न लगेगा। सत्यभामा के साथ रहना।

उ०—यह सत्यभामा कौन ?

अ०—मेरे संबन्धी के दूर के रिश्ते की कोई बहन। बड़ी सीधी लड़की है।

उ०—अच्छा। तो, फिर अशोक मैं तो इस जीवन से ऊब गई हूँ !

अ०—संवाद-दाताजी के पास जीवन ही क्या ! स्याही, काग़ज़, क़लम और अख़बारों के ढेर। काग़ज़वालों के तक़ाज़े। एक जापानी घड़ी [क्लॉक की ओर देखकर] दो एक टूटी टेबुल्स और मैले खद्दर

का पोश। वहाँ, मेरे साथ मसूरी में देखो। खुद का बंगला जिसमे बीस तो खानसामें ही हैं। मख़मली गद्दे, जिन पर बैठो तो मालूम हो किसी की गोद मे बैठी हो। रेशमी झालरे। अधखुली खिड़की से स्नोवेट् मार्निंग सन् की सुनहली किरणे यदि सारे शरीर को चूम लें तो बुरा न लगे। कमरे मे रखे हुए मल्टीकलर्ड कोटन के इन्द्र-धनुष। शाम को ठडी सड़क पर रॉबिन के जोड़ो का कोलाहल और उसी समय साथ साथ वाकिंग। शाम को पैलेडियम में अनेक तरह के शो और डास। वालनट की आराम कुर्सियों पर आइस क्रीम और जिन् की उड़ती हुई मस्ती भरी महक ··········।

उ०—अशोक, निश्चय! निश्चय!!

अ०—तो फिर आज रात को चलना निश्चय रहा?

उ०—निश्चय। मोस्ट डेफिनिटली। अशोक!

अ०—तो फिर······।

बाहर दरवाज़े पर आवाज़

उ०—[शकित होकर]—कौन? [अशोक उठ खड़ा होता है।]

[एक सत्रह वर्षीया युवती का प्रवेश। वस्त्रों में सरलता। मुद्रा में गम्भीरता। वह सौंदर्य की साक्षात् देवी है। भौंहों के बीच में रोली की नन्ही सी बिन्दी। ओठों की मिलन-रेखा में जैसे मुस्कान डूब गई है। अशोक को देखकर वह कुछ विचलित हो जाती है। आकर उषा को चुपचाप नमस्ते करती है।]

उ०—[हँसकर]—ओ राजे, तुम हो! आओ, ये मेरे बालसखा श्री

अशोककुमार गुप्ता, एम० ए०, एल-एल० बी० मुंसिफ और [अशोक से] ये मेरी सखी राजेश्वरी देवी। मैट्रिक तक हमारे और आपके संवाद-दाताजी के साथ पढ़ी हैं। बड़ी सरल और मिष्ट-भाषिणी हैं। जैसे ब्रह्मा ने इनके गले में एक कोयल बिठला दी है। [उषा और अशोक अट्टहास करते हैं। राजे लज्जित होकर रह जाती है। वह गंभीर है।]

अ० [रसिकता से]—हूँ, ब्रह्मा ने इनके गले में एक कोयल बिठला दी है, तब तो ये सिर्फ़ वसन्त ही में बोलती होंगी ? [हास्य]

उ०—वाह, तुम तो अभी से हँसी करने लगे !

अ०—ये बोली नहीं न ? आने की खबर भी दी तो दरवाज़े पर आवाज़ करके। आकर नमस्ते भी की तो चुपचाप।

उ०—क्या तुम अपने जैसा बातूनी सभी को समझते हो ?

अ०—बोली तो बोलने के लिए ही है। गले में बन्द रखने के लिए नहीं।

उ०—राजे वाणी का काम आँखों से लेती है। इतनी लज्जा-शीला है।

अ०—केवल लजा के समय या अन्य समय भी ? [तिरछी दृष्टि]

रा०—[कटुता से]—उस समय विशेष रूप से जब मुझे कोई बात अच्छी नहीं मालूम देती।

अ०—[नम्रता से]—ओः मुझे क्षमा कीजिये श्रीमती राजेश्वरी देवी जी। यदि मेरी बात आपको अच्छी न लगी हो। अच्छा, उषा जाता हूँ। बीस-पच्चीस मिनट बाद आऊँगा। संवाददाताजी से मिलता जाऊँगा।

उ०—अच्छी बात है। नमस्ते।

ग०—[नमस्ते करते हुए]—श्रीमती राजेश्वरी देवी को भी सादर नमस्ते। [राजे मौन नमस्ते करती है। अशोक का प्रस्थान।]

उ०—कहो राजे, कैसे आईं? कोई विशेष बात? इधर महीनों तुम्हारे दर्शन नहीं हुए। बैठो? [राजे बैठती है।]

रा०—बहिन........[रुक जाती है।]

उ०—कहो, कहो, रुक कैसे गईं?

रा०[करुण स्वर में]—मुझ पर विशेष संकट आ पड़ा है। सहायता करोगी?

उ०—[उत्साह से]—ज़रूर। कहो क्या बात है?

रा०—मेरे पास जबलपुर से सूचना आई है कि मेरी बड़ी बहन मृत्यु-शैया...!

उ०—[अस्थिर होकर]—एँ, मृत्यु-शैया पर......?

रा०—हाँ, जल में डूब गई थीं। वे.........[कुछ बोल नहीं सकती।]

उ०—जल में डूब गई थीं? हाँ, अभी मैंने समाचार-पत्र में पढ़ा कि जबलपुर में दस बालिकाओं से भरी नौका संग्राम सागर में डूब गई। कहीं उन्हीं में तो तुम्हारी बहिन नहीं थीं?

रा०—[दुःखी स्वर में]—हाँ, उन्हीं में थीं। पिकनिक में गई थीं। वे वहाँ बालिकाओं की संरक्षिका थीं। छात्राओं के साथ वे भी जल में डूब गई थीं। किसी तरह निकाली गई हैं। मृत्यु-शैया पर हैं। [साश्रु नयन]

उ०--राजे, यह सुनकर मुझे बहुत दुःख है। कहो तुम्हारी सहायता कैसे कर सकती हूँ ?

रा०—मैं अपने साथ प्रमोद जी को ले जाना चाहती हूँ। मैं उन्हीं के साथ जबलपुर जाऊँगी ?

उ०—अकेली ?

रा०—हाँ, अकेली। मै उन्हें अपना भाई मानती हूँ। वे मेरे श्रद्धेय बड़े भाई हैं। सहोदर ही भाई।

उ०—[उद्भ्रांत हो अस्फुट शब्दों में] —भाई · !

रा०—[दृढ़ता से]--हाँ भाई। वे मेरे प्रमोद भाई हैं। मैं उन्हीं के साथ जाऊँगी और मेरे साथ कौन है जो जावे ? वृद्ध पितामह आ जा ही नहीं सकते। भाई बहुत छोटा है। पिता की परसाल मृत्यु ही हो गई।

उ०—[विदग्ध होकर]—भाई मानती हो ? [सम्हलकर] पर उन्हें तो फ़ुर्सत ही नहीं है।

रा०—मै जानती हूँ, पर वे बहुत उदार हैं। उन्होंने मुझपर अनेक उपकार किये हैं। ऐसे आदमी ससार में बड़ी कठिनता से मिल सकेंगे।

उ०—सचमुच ?

रा०—[प्रशंसा के स्वरों मे)—वे धनी न हों तो क्या हुआ, वे हृदय के धनी हैं। हृदय को पहचानते हैं और सच्चे मनुष्य हैं। धन और रुतबे से कोई आदमी बड़ा नहीं होता। आदमी बड़ा होता है अपने हृदय से। वे तेजस्वी हैं, उदार हैं।

उ०—[विवशता से]—मेरे लिए तो सिर्फ संवाददाता हैं।

रा०—तुम यदि उनका संवाद न समझो तो इसमें उनका क्या दोष ? उनका संवाद मनुष्यत्व का सवाद है। वे दूसरे के लिए अपना सब कुछ दे सकते हैं। मेरे पास इसके अनेक प्रमाण हैं।

उ०—[जिज्ञासा की दृष्टि से]—प्रमाण ?

रा०—चार वर्ष बीत गये। एक बार जब मैं साइकिल पर बाज़ार जा रही थी उस समय एक इक्केवाले की लापरवाही से मेरी साइकिल इक्के से लड़ गई और मुझे सिर में गहरी चोट लगी। उस समय प्रमोद जी वहाँ एक भिखारी को रास्ता दिखला रहे थे। उन्होंने मुझे देखते ही मेरी साइकिल के टेढ़े हैंडिल को सीधा किया और मेरे सिर की चोट को अपने रेशमी रुमाल से बाँध दिया। साइकिल तो मेरे घर पहुँचा दी और मुझे अस्पताल ले जाकर मेरे घाव की ड्रेसिङ्ग कराकर बड़ी सहायता की। मेरे सिर मे बाँधा हुआ वह उनका रुमाल आज भी मेरे पास सुरक्षित है।

उ०—[किंचित व्यंग से]—स्मृति-स्वरूप ?

रा०—जो समझो। मैं उन्हें भूल नहीं सकती, वे भूलने योग्य नहीं हैं। मैं उन्हें भुला नहीं सकी।

उ०—और वे तुम्हें भूल सके ?

रा०—[गहरी साँस लेकर]—वे तो मुझ से आज तक नहीं मिले। मैं कुछ महीनों पहले तुम्हारे पास आई थी, विशेषकर उन्हीं के दर्शन करने के लिये। पर उस समय वे कहीं बाहर गये हुए थे। शायद बिहार में नदियों की बाढ़ से पीड़ित किसानों की रक्षा करने के लिए। कितने उदार हैं वे। जब मुझे सिर में चोट लगी थी तभी उनके दर्शन

हुए थे। इस घटना को हुए चार वर्ष बीत गये। तब से उनसे बातें ही नहीं हुई। काश, मुझे फिर कहीं चोट लग जाती!

उ०—[व्यंग से] हृदय में?

रा०—[उत्तेजित होकर] हँसी मत करो बहिन। वे कितने बड़े हैं यह तुम अभी तक नहीं जान सकीं। वे मेरे सहोदर भाई से भी अधिक हैं, मैं किस श्रद्धा से उनकी पूजा करती हूँ, यह तुम क्या जानो! वे कितने महान् हैं! न जाने उन्होंने कितनों पर ऐसे उपकार किये होंगे? मेरी याद उन्हें क्या होगी? इसीलिए डर रही हूँ कि वे मुझे पहचानेंगे भी या नहीं।

उ०—क्यों, तुम तो उनके साथ पढ़ी भी हो!

रा०—हाँ, यों तो मैं उनके साथ कुछ दिनों पढ़ी हूँ; पर कभी उन्होंने मुझसे पहिचान करने की कोशिश नहीं की। मैं अपना परिचय देने के लिए उनका वही रुमाल लाई हूँ जो उन्होंने मेरे सिर में बाँधा था। इसी से चाहे वे मुझे पहिचानें। देखो वह यह है। [रुमाल आगे बढ़ाती है।]

उ०—[हाथ में लेकर बड़ी सावधानी से देख कर] ओहो, बड़ी सावधानी से सुरक्षित है! यह इस कोने में लिखा है 'पी'। राजे, यदि इसे मैं फाड़ डालूँ?

रा०—[घबराकर हाथ पकड़कर] नहीं उषा, उसे मत फाड़ना। मेरे जीवन की पवित्र स्मृति फट जायगी। मैं मर जाऊँगी।

उ०—[मुस्कुराकर] घबड़ा गई? बड़ी भारी निधि है! रेशम का छोटा सा टुकड़ा!! यह लो [लापरवाही से देती है।]

रा०—[रूमाल लेकर तह करते हुए] रेशम का टुकड़ा ही सही। पर यह उनकी महत्ता और उपकार का जीवन-पर्यंत उदाहरण है। उसे तुम क्या समझो उषा ?

उ०—इसीलिए शायद अभी तक अविवाहिता हो !

रा०—[रुक्षता से] उषा, इस समय मैं तुम्हारा परिहास सुनने नहीं आई हूँ। मैं इस समय सकट में हूँ। तुम्हारी सहायता चाहने आई हूँ।

उ०—[जैसे उसकी विपत्ति का स्मरणकर] अह्, क्षमा करना राजे ! मैं बिलकुल भूल गई। मैं जानती हूँ, मेरा स्वभाव बहुत वैसा हो रहा है। इससे मुझे छुटकारा नहीं। राजे, क्षमा करना।

रा०—अच्छा बहिन, मैं कल ही जबलपुर जा रही हूँ। यदि तुम भी उनसे कहोगी तो वे अवश्य मेरे साथ चलेंगे। किसी की बीमारी या किसी की विपत्ति सुन कर वे सब कुछ कर सकते हैं। मैं तो यह विश्वास पूर्वक कह भी नहीं सकती कि उनको मेरा स्मरण होगा। मैंने जब जब प्रयत्न किया कि उनके दर्शन करूँ तब तब वे किसी न किसी काम से बाहर चले जाते थे। उदार हो कर भी चरित्रवान ! उषा, ऐसे व्यक्ति संसार में कितने हैं ? उदार, चरित्रवान, किसी के सङ्कट में वे सब कुछ कर सकते हैं !

उ०—[सोचते हुए] हाँ, इसका प्रमाण मेरे पास भी है कि मेरी माँ की बीमारी सुन कर उन्होंने मुझे जाने की आज्ञा बड़ी आसानी से दे दी।

रा०—[चौंककर] तो क्या तुम्हारी माँ बीमार हैं ?

उ०—[कुछ उत्तर नहीं देती ।]

रा०—तो फिर बहिन, मैं उनसे चलने का अनुरोध न करूँगी। वे इस समय कहाँ हैं ? काम कर रहे हैं ?

उ०—नहीं, बाहर गये हैं, चौक ।

रा०—आज भी बाहर ! हाय, सब समय बाहर ! मेरा दुर्भाग्य ! कब तक लौट आवेंगे ?

उ०—यही घंटे, आध घंटे में ।

रा०—क्या तुम अपनी माता जी के पास जा रही हो ?

उ०—हाँ, सोच रही हूँ ।

रा०—तो फिर बहिन, वे भी तुम्हारे साथ जायेंगे । तुमने चलने के लिए उनसे कहा होगा ?

उ०—कहा तो था पर बाद में मैंने कहा कि मैं अशोक के साथ चली जाऊँगी ।

रा०—किस अशोक के साथ ?

उ०—इन्हीं अशोक के साथ जो अभी यहाँ बैठे थे। इतनी जल्दी भूल गई ?

रा०—ये अशोक ! बहिन, इसके साथ मत जाना । क्षमा करना । इनकी आँखों में जैसे पिशाच नाच रहा था । क्या तुम इन पर विश्वास कर सकती हो ? मैं तो इनकी दृष्टि से ही भयभीत हो गई थी ! एक बात भी नहीं कर सकी ।

उ०—मैं अशोक को जानती हूँ, वे हमारे बालसखा हैं। हमारे साथ के पढ़े हुए हैं।

रा०—जो हो, तुम जानो। पर मैं तो ऐसे आदमी पर कभी विश्वास नहीं कर सकती। क्षमा करना यह आलोचना। अच्छा तो मैं जाती हूँ।

उ०—उनसे तो मिलती जाओ।

रा०—नहीं, यदि मैं उनसे मिली तो वे मेरे साथ चलना अधिक उचित समझेंगे। जब मेरी बहिन मृत्युशैया पर है तब वे मेरे साथ ही जावेंगे। मेरी आवश्यकता अन्य आवश्यकताओं से बहुत बड़ी है। पर बहिन, मैं तुम्हारी माँ की बीमारी में उन्हें तुमसे दूर नहीं हटाना चाहती। उन्हें तुम अपने साथ लेती जाओ। माँ की बीमारी में वे अनेक प्रकार से सहायक होंगे। तुम उनसे मेरा नमस्ते कह देना।

उ०—ठहरो, आते ही होंगे। [बाहर से शब्द] वे आये।

[बाहर से शब्द] पोस्टमैन।

उ०—अरे पोस्टमैन है! [कुछ ज़ोर से] अन्दर आओ।

पोस्टमैन—[अन्दर आकर]—ये डाक है। [अख़बारों का बड़ा सा पुलिन्दा देता है] और ये प्रमोद बाबू के नाम एक मनी-आडर। जल्दी दसखत बनाइ दें। पोस्ट आपिस बन्द होइ वाला है। [उषा दस्तख़त कर मनीआर्डर लेती है। पोस्टमैन चला जाता है।]

रा०—मनीआर्डर है? क्या राष्ट्रवाणी का चन्दा है?

उ०—नहीं, मोतीहारी से आया है। इन्होंने बिहार के बाढ़ पीड़ितों को मृत्यु के मुख से बचाया था इसलिए वहाँ के नागरिक इन्हें मान-पत्र देना चाहते हैं, ७ अगस्त को। साथ ही ये दो सौ रुपये भेजे हैं।

रा०—अच्छा, इतना सम्मान ! ओः ये कितने महान् हैं !

उ०—[सोचती रह जाती है।]

रा०—अच्छा बहिन, अब जाऊँगी। मान-पत्र तो इन्हें ७ तारीख़ को मिलेगा, आज तो १८ जुलाई ही है। [कैलेंडर की ओर देखती है।] तब तक तुम इन्हे अपने साथ ले जा सकती हो। ये तुम्हारे बड़े सहायक होंगे।

उ०—ठहरो न कुछ देर ? वे आते ही होंगे।

रा०—नहीं अब मैं जाऊँगी। मैं अकेली ही चली जाऊँगी। [प्रस्थान]

[उषा थोड़ी देर तक सोचती रहती है। फिर प्रमोद की फ़ोटो के समीप जाकर मुख की ओर देखकर स्वगत कहती है।]—क्या ये इतने महान् हैं ! वास्तव में इतने महान् हैं ! राजे कहती है, उपकार करने पर भी विस्मरण ! उदार होकर भी चरित्रवान ! यदि तुम इनका संवाद न समझो तो इसमें इनका क्या दोष ! इनका संवाद मनुष्यत्व का संवाद है ! संवाददाता......मेरे ..!

[प्रमोद का प्रवेश। वह थका हुआ है। रुमाल से पसीना पोंछता है।] उषा, तीन जगह भटकने पर तुम्हारी दवाइयाँ मिलीं। इसी से इतनी देर हुई। सबसे पहिले लो ये टाफ़ीज़, यह लो यह यू० डी० क्लोन और वैपेक्स।

उ० [कृतज्ञता से]—धन्यवाद ! अभी राजे आई थी—

प्र०—कौन राजे ?

उ०—राजेश्वरी देवी ।

प्र०—कौन राजेश्वरी देवी ?

उ०—वही जिनके सिर में चोट लगी थी ।

प्र०—(आश्चर्य से)—किनके सिर में ? कब ?

उ०—चार वर्ष पहले ।

प्र०—चार वर्ष पहले ? क्या हँसी कर रही हो ?

उ०—नहीं, सच कह रही हूँ । राजेश्वरी देवी, एक नवयुवती-साइकिल पर बाज़ार जाती है--उसकी साइकिल इक्के से लड़ जाती है---उसके सिर में चोट आ जाती है—आप भिखारी को राह दिखलाने में व्यस्त हैं—आप अपने रेशमी रुमाल से उसका सिर बाँधते हैं—उसे अस्पताल ले जाते हैं-आपके साथ वह कभी पढती भी थी-राजे---राजेश्वरी देवी ।

प्र०—[स्मरण कर]—ओः वे राजेश्वरी देवी ! मुझे स्मरण ही नहीं रहा ।

उ०—इतना उपकार करने पर भी विस्मरण !

प्र०—उषा, मुझे स्मरण नहीं रहा । मैं दोषी हूँ ।

[बाहर अशोक की आवाज़]—प्रमोद ! मिस्टर प्रमोद ।

प्र०—कौन ?

[अशोक का प्रवेश । उसके हाथ में एक हैंड-बैग भी है ।]

प्र०—ओ, आओ भाई अशोक, कहो अच्छे तो हो ? [हाथ मिलाता है।] कहो कब आये ? अरे उषा, ये अशोक आए हैं, अशोक, अपने पुराने अशोक । [उषा चुप रहती है ।] ओ, तुमने नमस्ते भी नहीं किया ? अरे अशोक, तुम भी उषा को देखकर चुप हो ! [उषा से] नमस्ते करो ! [उषा नमस्ते करती है । अशोक भी दोनों हाथ जोड़ कर नमस्ते करता है ।]

अ०—भाई, पहले नंबर तुम्हारा है फिर उषा का । उषा जी, माफ़ करना । प्रमोद जी से ही पहले नज़र मिल गई !

प्र०—तुम बड़े शैतान हो, तुम्हारी पुरानी आदतें अभी गई नहीं । अच्छा, यह बतलाओ, आए कब ?

अ०—अरे भाई, अभी आया 'जस्ट नाऊ' । अब पूछो कि कब जा रहा हूँ । व्हेन ।

प्र०—इतनी जल्दी कैसे जा सकते हो ? इस बैग मे क्या है ?

अ०—कुछ नहीं भाई, अपनी बहन सत्यभामा के लिये कुछ चीज़ें खरीदनी थीं । लगे हाथों मैंने सोचा, लाओ उषा के लिए भी एक हीरे की अँगूठी खरीद लूँ ।

उ०—[गंभीरता से] मुझे कोई अँगूठी नहीं चाहिए ।

अ०—यह कैसे मान लूँ ? आप लोग तो 'हाँ' को पहले 'न' ही कहती हैं । यह तो मेरा आर्ट है कि मैं आपको दूँ ।

उ०—मिस्टर अशोक, मैं ठीक कह रही हूँ । अँगूठी मुझे नहीं चाहिए । थैंक्स ।

अ०—[लापरवाही से] मेरी प्रेजेंट आज तक किसी ने नहीं लौटाई। अँगूठी लेनी ही होगी।

[बैग में से अँगूठी निकालता है।] और यह मत समझना प्रमोद कि तुम्हारे लिए कुछ नहीं लाया। लाया हूँ—चार दस्ते सफेद कागज़ [कागज़ निकालते हुए] अग्रलेख लिखने के लिये। दो बढ़िया होल्डर, न्यूज़ पेपर काटने की एक कैंची और·····[सब चीज़ें टेबिल पर रखता है।]

प्र०—[हँसकर]—अशोक, तुम्हारी हँसी अब तक नहीं गई। अरे, अब मुंसिफ साहब हो गये हो, मैंने सुना। काग्रेचुलेशंस।

अ०—थैंक्स, सवाददाताजी! मुसिफी और मेरी हँसी से क्या रिश्ता? जो मुंसिफी मेरा रोमास ले वैठे उस मुसिफी से मेरा गुडबाई!

प्र०—अच्छा तो यह हीरे की अँगूठी क्या होगी?

अ०—तुम्हें कहाँ दे रहा हूँ? दे रहा हूँ अपनी वहन उषा को सत्यभामा की तरह।

प्र०—अशोक, इसकी ज़रूरत नहीं। मैं गरीब हूँ, मुंसिफ नहीं। यह हीरे की अँगूठी हम लोगों से नहीं सँभलेगी। मै इस अँगूठी का उत्तर तुम्हें किसी तरह भी नहीं दे सकूँगा।

अ०—क्या इस अँगूठी के लिए मै तुमसे कोई 'रिटर्न' चाहता हूँ?

प्र०—अशोक, मैं गरीब हूँ पर अपनी मर्यादा के साथ हूँ। तुम न सोचो, मैं तो सोचूँगा। [उषा मौन होकर प्रमोद को एकटक देखती रह जाती है।]

अ०—डैम इट्। यह फिलासफी ले बैठे। ख़ैर, उषा से समझ लूँगा। मुझे जल्दी जाना है।

प्र०—अच्छा, तो फिर इतनी जल्दी जा क्यों रहे हो? अभी ठहरो, दो एक दिन मेरे पास।

अ०—थैंक्स, मेरे पास समय नहीं है। प्रमोद, मुझे जल्द ही चार्ज लेना है। और फिर एक बात है। उषा की माँ की तबीयत ख़राब है। [उषा से] उषा, तुम्हारी माँ की तबीयत ख़राब है। तुम्हारी माँ की तबीयत ज़्यादा ख़राब है। [उषा चुप रहती है।] तुम्हें मालूम हुआ? मेरे साथ तुम्हें देहरादून चलना है। [प्रमोद से] क्यों प्रमोद, तुम्हें भी तो ख़बर मिली होगी कि उषा की माँ की तबीयत ख़राब है।

प्र०—हाँ, उषा ही ने कहा था।

अ०—तो उषा भी जाना चाहती है, तुम्हे कोई आपत्ति तो नहीं है?

प्र०—मुझे कोई आपत्ति नही है। उषा की माँ की तबीयत ख़राब हो और उषा के भेजने में आपत्ति! कैसी बातें करते हो? फिर तुम्हारे साथ? मेरे परिचित, मित्र, सहपाठी! कब जा रहे हो?

अ०—आज, अभी शाम की गाड़ी से।

प्र०—अभी तो उनकी कोई तैयारी नहीं।

अ०—भई वाह, माँ को देखने जाने में किस तैयारी की ज़रूरत!

प्र०—तो भी कुछ कपड़े-वपड़े—

अ०—तो फिर बस इतना ही वक्त है।

प्र०—चा तो पीते जाओ।

अ०—फ़ारमैलिटी में मत पड़ो। ट्रेन टाइम है सिक्स थरटीन, मुझे वहाँ पौने छः बजे पहुँच जाना चाहिए। स्टेशन यहाँ से काफी दूर है। उषा से तैयार होने को कह दो। और यह लो अपने चार दस्ते कागज़। ज़रा लोग समझें तो कि हम लोग कितने फ्रेंडली हैं। फिर यह प्रेज़ेंट।

प्र०—बिना प्रेज़ेंट के ही लोग हम लोगों को फ्रेंडली समझते हैं। पर तुम्हारी प्रेज़ेंट मैं लूँगा। इसकी क़ीमत मेरी नज़रों में स्वर्ण-पत्र के बराबर है।

[अशोक मुस्कुराता है, उषा गंभीर होकर प्रमोद को देखती है। अच्छा उषा, तैयार हो जाओ। अशोक के साथ जाओ। अच्छी तरह से रहना। अपने माता पिता से मेरा प्रणाम कहना। शीघ्र ही आने की कोशिश करूँगा..........

अ०—[बीच ही में] मैं तो यहाँ हूँ। तुम्हारे कष्ट करने की ज़रूरत क्या है प्रमोद ? मेरे रहते किसी तरह की तकलीफ हो ? कैसी बातें करते हो, तुम हुए या मैं हुआ ? इट् इज़ आल दि सेम।

प्र०—पर तुम तो चार दिन बाद चले जाओगे अपनी मुंसिफी पर।

अ०—मैं सब इतज़ाम कर जाऊँगा ; डॉक्टर्स, नर्सेस, कंपाउण्डर्स, सब को मैं उँगलियों पर नचाता हूँ। वह तो मुझे वायर मिला कि उषा की माँ की तबीयत ख़राब है। यही वजह है कि मैं देहरादून जा

रहा हूँ। फादर से मिलना तो महज़ फारमैलिटी की बात है।

प्र०—तो उषा, तुम जाने के लिए तैयार हो जाओ। मैं भी मुँह धो लूँ। धूल में भर रहा हूँ। [प्रस्थान]

अ०—तो उषा तुम तैयार हो जाओ। [उषा चुप रहती है।]

हम लोगों के पास समय नहीं है। तुम तैयार हो जाओ उषा चलने के लिये—

उ०—अशोक तुम बड़े नीच हो।

अ०—ये झिड़कियाँ! अभी से? नीच हूँ, ऐसा हूँ, वैसा हूँ,। अच्छा! मज़ाक़ रहने दो आलदो तुम्हारे मुँह से यह भी सुनना अच्छा लगता है। ओह्, उषा जब ग़ुस्से में भी तुम इतनी अच्छी लगती हो तो फिर ख़ुश होने पर तो हैवेन अनवील्ड! हैवान नहीं।

उ०—[तीव्रता से] अशोक—

अ०—उषा, अब किसी डुएट के लिए हम लोगों के पास वक़्त नहीं है। अब तो हम लोगों को अपनी जरनी का प्रोग्राम बनाना चाहिए। अच्छा यह बतलाओ, सीधे देहरादून ही चलोगी कि बीच में कहीं ठहरना·······

उ०—बको मत अशोक!

अ०—अरे, यह क्या कह रही हैं जनाब! आपके रुख़ तो बड़े बढ़े-चढ़े हैं। आसानी से सम्हलने के नहीं। ज़रा बदल के कहूँ—हाउ हाइ हर हाइनेस होल्ड्स हर हाटी हैड!

उ०—शट् अप्।

अ०—जनाब ने कोई नशा तो नहीं किया ? आख़िर आपके ये हैं क्या रंग ? क्या चलने का इरादा नहीं है ?

उ०—[दृढ़ता से] नहीं।

अ०—[आश्चर्य से] नहीं ?

उ०—नहीं, तुम अकेले जा सकते हो। मैं न जा सकूँगी।

अ०—अरे, तुम्हें हो क्या गया ? माँ की तबीयत ख़राब है और तुम नहीं जाओगी ! ख़ूब रहा।

उ०—मैं जानती हूँ, माँ की तबीयत ख़राब नहीं है। मैं नहीं जाऊँगी।

अ० [उसी स्वर में]—अभी तो तुमने कहा कि माँ की तबीयत ठीक नहीं है।

[प्रमोद का प्रवेश।]

उ०—मेरी माँ की तबीयत अब ठीक है। मैं नहीं जाऊँगी।

अ०—उषा, पागल हो गई हो क्या ? संवाददाताजी, अपनी 'राष्ट्रवाणी' में प्रकाशित करा दीजिए—उषा पागल हो गई।

उ० [क्रोध से]—आप उन्हें संवाददाता कहकर मज़ाक न उड़ाइए। आप उन्हें क्या समझें, वे क्या हैं।

[प्रमोद आश्चर्य-चकित है।]

अ०—'रा ष्ट्र वा णी' के सं वा द दा ता—[प्रत्येक अक्षर पर ज़ोर देता हुआ।]

उ०—चुप रहो अशोक। तुम अकेले जा सकते हो।

अ०—तो क्या मैं अकेला ही जाऊँ ? तुम्हारी हीरे की अँगूठी-

उ०—उसे अपने ही पास रक्खो। कभी काम देगी।

अ०—तो मैं अकेले......।

उ०—बिलकुल अकेले जाओ, अशोक। अब मैं तुमसे बात नहीं करना चाहती। [भीतर चली जाती है।]

प्र०—[आश्चर्य से]—मैं नहीं समझ रहा हूँ कि यह क्या बात है !

अ०—जाने दो प्रमोद। आजकल की स्त्रियों पर क्या एतबार ! कभी मैनचेस्टर का सिल्क पहनती हैं, कभी प्रोसेशन में जाकर महात्मा गाँधी की जय बोलती हैं। इन्हें हवा का रुख समझ लो। चाहे जिधर बह जाँय। फीमेल माइण्ड इज ए मिस्ट्री मिस्टर। अच्छा तो फिर मैं जाता हूँ, ज़रा जल्दी में हूँ। अभी जाकर उषा को तुम छेड़ना मत। नशे में होगी, न जाने क्या-क्या कह दे।

प्र०—क्या उषा देहरादून नहीं जा रही हैं ?

अ०—नहीं ?

प्र०—क्यों ?

अ०—पता नहीं। अभी एक मिनट में ठीक बातें कर रही थी—अभी जाने क्या हो गया ?

प्र०—क्या हो गया !

अ०—गाड नोज़ ! सारी तहज़ीब भूल गई।

प्र०—सचमुच उषा का यह व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगा।

मैं पूँछूँ क्यों नहीं जा रही है ?

अ०—जाने भी दो भाई, तुमसे भी वाही-तवाही बकने लगेगी। इन एज्युकेटेड गर्ल्स में यही बात तो ख़ास है कि जो मुँह में आया दे मारा सर से। इनसे पूछना क्या है ? तबीयत बदल गई। जनाब, अब नहीं जायेंगी। करे, कोई क्या करता है !

प्र०—अच्छा ! ख़ैर, जब वह नहीं जा रही है तो तुम मेरा प्रणाम उषा के माता पिता से कह देना और माताजी के बारे में शीघ्र ही लिखना।

अ०—ज़रूर, माँ की तबीयत ख़राब ज़रूर है। उषा ने ख़ुद मुझसे कहा था। अब बिलकुल उलटी बात कहती है।

प्र०—अशोक, मुझे मालूम होना चाहिये कि दरअसल वे क्यों नहीं जा रही हैं।

अ०—पूछ कर क्या करोगे ? तुमसे भी वह ऐसी ही बातें करेंगी। जनाब, इन लोगो के आगे लियाक़त खत्म हो जाती है। पता नहीं किस वक्त क्या सोच जाँय। बात करते करते इनडिफरेंट हो जाना तो इन लोगों का वर्थ राइट है।

प्र०—[किंचित हास्य।]

अ०—हाँ, भाई, अभी कहा कि माँ बीमार हैं, फिर कहा कि अच्छी हैं। अभी कहा कि देहरादून जाऊँगी फिर कहा नहीं जाऊँगी।

प्र०—[अव्यवस्थित होकर] हाँ, मुझसे भी जब वे देहरादून जाने की बात कर रही थीं तो उन्होंने अपनी माताजी के बीमार होने के विषय में कहा था।

अ०—.खैर जाने दो, जब उनका दिमाग़ कुछ शान्त हो जाय तब पूछना। अभी तो आराम करने दो। अच्छा भाई, तो मैं अब जाता हूँ।

प्र०—तो फिर चले ही जाओगे ?

अ०—हाँ, जाना ज़रूरी है।

प्र०—अच्छा, तो ख़बर लेने के लिए मैं शीघ्र ही आऊँगा।

अ०—.जरूर आना। हाँ, और देखो, तुम यह मत सोचना कि अशोक अभी आया और अभी चला गया। भाई, मैं तुम्हारा वही पुराना सिनसीयर दोस्त हूँ। कोई चाहे कितना ही कहे, उसकी बात पर ध्यान देना मामूली आदमियों का काम है, तुम्हारा नहीं।

प्र०—[लज्जित सा होकर] अच्छा ! यह कहोगे ?

अ०—तुम सिर्फ संवाददाता हो तो क्या हुआ तुम में दुनिया को समझने की ताक़त है। दुनिया भर के अख़बारों को देखते हो। न जाने कितनी बातें पढते होंगे। लेकिन तह तक पहुँचने की ताक़त उसीकी हो सकती है जिसने तुम्हारी तरह इतना पढा है। मैं तो मज़ाक में तुमसे न जाने क्या क्या कह देता हूँ लेकिन दर असल पूछा जाय तो मैं तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता, मुसिफ हो गया तो क्या ?

प्र०—आज तो बड़ी बातें झाड़ रहे हो !

अ०—नहीं पते की बातें कहता हूँ भाई। मुझे इस बात का प्राइड है कि मुझे तुम्हारा जैसा दोस्त मिला। यहाँ से मैं निकल जाऊँ और मजाल कि तुम्हारे पास न ठहरूँ ?

प्र०—भाई, यह तुम्हारी कृपा है!

अ०—लिखना मैं ठीक कह नहीं सकता! ऐसी कठिन जबान बोलते हो भाई! अच्छा तो फिर लिखना।

प्र०—लिखना कैसा, मैं खुद आऊँगा यह देखने के लिए कि उषा की माँ की तबीयत क्या सचमुच खराब है!

अ०—हाँ. आने की तारीख़ लिखोगे तो स्टेशन पर आ जाऊँगा। अच्छा भाई चला। गुडबाई!

[प्रस्थान]

प्र०—[हाथ उठा देता है। सोचते हुए लौट कर] उषा में यह कैसी अशिष्टता! [पुकार कर] उषा!

[उषा का प्रवेश साधारण वस्त्रों में]

उ०—कहिए।

प्र०—[उषा को देख कर आश्चर्य से] अरे उषा, यह क्या! ऐं, तुम्हें यह हो क्या गया है?

उ०—[सरलता से] कुछ नहीं। यह साधारण साड़ी मुझे अब बड़ी अच्छी लगने लगी है।

प्र०—क्या तुमने कोई नशा किया है?

उ०—नहीं, अब नशा उतर गया है।

प्र०—मैं तो कुछ समझा नहीं! आज का तुम्हारा यह व्यवहार अच्छा नहीं रहा अशोक के साथ!

उ०—मैंने उचित ही व्यवहार किया। यदि भूल हुई हो तो क्षमा चाहती हूँ। [हाथ जोड़ती है।]

प्र०—उषा, क्षमा चाहती हो ? मुझसे ? मैंने तो आज तक यह शब्द तुमसे सुना ही नहीं। व्यंग्य मत करो।

उ०—ओह, मैं तुम पर व्यंग करूँगी ? तुम कितने महान् हो, मैं अभी तक यह नहीं समझ सकी। मैंने माँ के विषय में जो झूठ बात कही थी उसकी भी क्षमा दो। तुम उदार हो, चरित्रवान हो, मैं तुम्हें पाकर··· ·····।

प्र०—[हँसते हुए] कितनी दुखी हो ! अच्छा उषा, दुखी ही रहो पर ये अपनी दवाइयाँ तो लो। [दवा की तरफ़ इशारा करता है।]

उ०—[दवाओं को फेंककर] अब मुझे इनकी आवश्यकता नहीं।

प्र०—[आश्चर्य से] मैं समझ नहीं रहा हूँ उषा, यह तुम क्या कह रही हो ? यह शीघ्र परिवर्तन !

उ०—शीघ्र ! कहिए कितनी देर में परिवर्तन ! [स्मरण कर] आह, राजे, तुमने मेरी आँखें··· ··।

प्र०—राजे ? यह क्या कह रही हो ?

उ०—कुछ नहीं, मेरी एक प्रार्थना मानोगे ?

प्र०—[प्रसन्नता से] कैसी प्रार्थना ?

उ०—केवल एक प्रार्थना ?

प्र०—कौन-सी ?

उ०—राजेश्वरी देवी के साथ उनकी बहिन की रक्षा करने के लिये जबलपुर चलो।

प्र०—कैसी बहिन ?

उ०--उनकी बहिन कुसुद पानी में डूब गई थीं। किसी तरह से वे बचाई जा सकी हैं। इस समय उनकी परिचर्या की आवश्यकता है। वे मृत्यु-शैया पर हैं। यह देखो समाचार। [समाचार पत्र देती है।] यह पढ़ा कि नहीं ?

प्र०—[समाचार पढ़कर चिंता से] आह, इनमें तुम्हारी सखी की बहिन है ? तब तो मैं ज़रूर जाऊँगा, भीख माँग कर भी जाऊँगा। तुम भी चल सको तो चलो। आह ! बेचारी कुसुद !

उ०—भीख न माँगनी पड़ेगी। मैं गृहलक्ष्मी जो हूँ।

प्र०—गृहलक्ष्मी !

उ०—हाँ, गृह की लक्ष्मी ! जादू के ज़ोर से जितने रुपये कहो अभी निकाल सकती हूँ। दस, बीस, पचास, सौ, दो सौ।

प्र०—बस ?

उ०—और मान-पत्र भी दे सकती हूँ।

प्र०—कैसा मान-पत्र ?

उ०—अच्छा, हँसी का समय नहीं है। मोतिहारी के नागरिक आप को मान-पत्र देना चाहते हैं। आपने बिहार के पीड़ित किसानों की रक्षा की थी न ? साथ में दो सौ रुपये भी भेजे हैं। यह देखिए कूपन। [कूपन देती है।]

प्र०—[कूपन देखते हुए] ख़ैर, मान-पत्र की आवश्यकता तो मुझे है नहीं। ये दो सौ रुपये जबलपुर जाने में

अवश्य सहायक होंगे। इस समय तो राजे की बहन........अच्छा तो मैं जाऊँ?

उ०—हाँ, राजे के पास जाओ। उसे सूचित कर दो कि हम दोनो भी साथ चल रहे हैं। शीघ्र जाओ, नहीं तो शायद वह अकेली ही चल दे। उसके मकान का नम्बर है ११, वैलिंगडन रोड। तब तक कहो तो मैं तुम्हारा संवाद पूरा कर दूँ—

प्र०—मेरा संवाद तुम पूरा करोगी उषा! उसका प्रबन्ध मैं कर लूँगा। कष्ट मत करो। अच्छा तो मैं जाता हूँ। [शीघ्रता से जाता है।]

[उषा संवाद को पूरा करने के लिए टेबुल पर बैठ जाती है और ज़ोर से पढ़ती है—

आहत स्त्री पुरुषों का लोमहर्षक चीत्कार!!

बिहटा। १८ जुलाई—अभी तक की ट्रेन-दुर्घटनाओं में सब से भयानक वह है जो पटना के समीप बिहटा नामक स्थान में १७ वीं तारीख़ की रात्रि को घटी। पंजाब हावड़ा एक्सप्रेस जो पचास मील के वेग से जा रही थी, अचानक बिहटा के समीप उलट गई। तीन सौ यात्री घायल हुए। सौ की तो मृत्यु ही हो गई। ऐंजिन रास्ते से टेढा होकर नीचे गिर पडा जैसे कोई दैत्य ठोकर खाकर बैठ गया हो। चार-पाँच डिब्बे चूर-चूर हो गये। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। कोई-कोई यात्री तो अंग-विहीन हो गये। एक व्यक्ति के दोनों हाथ कट गए। उसकी नव-विवाहिता पत्नी को भी चोट लगी। किन्तु वह

साधारण है। पर उसे जो मानसिक चोट लगी है वह उसकी शारीरिक चोट से कितनी भयानक है········!

उ०—[ऊपर दृष्टि कर करुणाव्यञ्जक शब्दों में कहती है—] और मुझे जो मानसिक चोट लगी है वह उसकी शारीरिक चोट से कितनी भयानक है !!!

पटाक्षेप

४

एक तोले अफ़ीम की क़ीमत

(जुलाई १९२९)

पात्र-परिचय

१ मुरारी मोहन बी० ए०—नये विचारों का नवयुवक और लाला सीताराम अफ़ीम के व्यापारी का पुत्र—आयु २१ वर्ष

२ कुमारी विश्व मोहिनी—एनीबैसेंट कालेज में सेकंड ईयर की छात्रा—आयु १८ वर्ष

३ रामदीन—लाला सीताराम का नौकर—आयु ४० वर्ष

४ जोखू—चौकीदार— आयु ५० वर्ष

इस नाटक का सर्व प्रथम अभिनय लक्ष्मी भवन नरसिंहपुर में १४ सितंबर १९४० को श्री चन्द्रप्रकाश वर्मा बी० ए० के निर्देशन में हुआ। भूमिका इस प्रकार थी :

मुरारी मोहन	...	श्री चन्द्र प्रकाश वर्मा बी० ए०
विश्वमोहिनी	...	श्री जगदीशप्रसाद वर्मा
रामदीन	...	श्री रविप्रकाश
जोखू	...	श्री जागेश्वर अग्रवाल

समय—रात के दस बजे के बाद; लाला सीताराम की दूकान, उसी में एक सजा हुआ कमरा। एक बड़ा टेबुल। उस पर काग़ज़, क़लम, दावात आदि सुसज्जित हैं। टेबुल के आसपास दो-तीन कुर्सियाँ रखी हुई हैं। बगल में एक बेंच जिस पर कारपेट बिछा हुआ है। दीवाल पर दो-तीन फ़ोटो लगे हुए हैं। जिनमें एक मकान के मालिक सीताराम का और दूसरा उनकी पत्नी का है, जो अब इस संसार में नहीं हैं। दोनों के बीच में श्री लक्ष्मी जी का एक चित्र लगा हुआ है। दाहिनी ओर एक साइनबोर्ड है, जिसमें 'लाला सीताराम-अफीम के व्यापारी' लिखा हुआ है। दीवाल पर कुछ ऊँचाई से एक क्लॉक टँगी हुई है, जिसमें दस बज कर पन्द्रह मिनट हुए हैं। क्लॉक के बग़ल में एक कैलेंडर है।

मुरारीमोहन लाला सीताराम का लड़का है—नये विचारों में पूर्ण रीति से रँगा हुआ। वह इसी वर्ष बी० ए० पास हुआ है। उम्र २१ वर्ष। देखने में सुन्दर। साफ़ क़मीज़ और धोती पहने हुए है। टेबुल पर बिखरे हुए काग़ज़ ठीक करने के बाद वह कुर्सी पर बैठकर अख़बार देख रहा है। चिन्ता की गहरी रेखाएँ—उसके मुख पर देखी जा सकती हैं। वह किसी समस्या के सुलझाने में व्यस्त मालूम देता है। दो एक

बार अखबार से नज़र उठा कर दीवाल की ओर शून्य में देखने लगता है ।]

मु०—(एक क्षण अखबार की ओर देख कर पुकारते हुए) रामदीन !

रा०—[बाहर से] सरकार ।

[रामदीन का प्रवेश । घुटने तक धोती, गञ्जी और पगड़ी पहने हुए है । बड़ा बातूनी है ! लेकिन है समझदार । आकर नम्रता से खड़ा हो जाता है ।]

मु०—रामदीन ! बाबूजी जाते वक्त कुछ कह गये हैं ?

रा०—[हाथ जोड़ कर] कोई खास बात नाहीं सरकार । कहत रहे कि मुरारी भैया को देखते रहना तकलीफ न हो । नहीं तो रामदीन तुम जानो, ऐसी कहत रहे सरकार ।

मु०—[लापरवाही से] ऐसा कहा ? [हँसकर] हँअ्, मुझे क्या तकलीफ होगी रामदीन ? कब आने को कहा है ?

रा०—सरकार, परसो साम के कहा है । बहुत जरूरी काम है, नाहीं तो काहे जाते सरकार ?

मु०—परसों आएँगे ? कौन तारीख़ है ? [कैलेंडर कि ओर देखता है ।] १५ जुलाई ! [ठंडी साँस लेकर] खैर ।

रा०—[मुरारी को चिंतित देखकर] सरकार, जल्दी काम खतम होय जाय तो जल्दी आय जाँय । कोई बात है सरकार ?

मु०—[लापरवाही से] कोई बात नहीं । बाबूजी गए किसलिए हैं, तुम्हें मालूम है ?

रा०—[हाथ भुलाकर] ए लो सरकार, आप लोग न जाने ? हम गरीब मनई सरकार के काम को का समझे ? हाँ, कहत रहे कि अफीम अब बढ़ाय गई है। गाजीपुर से नवा कारबार चालू भवा है। यही बरे जाना पड़ गवा।

मु०—मुझसे तो बातें ही न हो सकीं। मैं समझा, किसी से कुछ तय करने के लिए गये हैं। मेरी आजकल कुछ ज्यादा फिकर मालूम होती है।

रा०— काहे न होय सरकार ? अब आपै तो हैं, और कौन है, सरकार ?

मु०—अच्छा [घडी की ओर देखकर] रामदीन ! अब जाओ तुम। दस बज चुके।

रा०—सरकार हमका तो हुकुम है कि यहीं दुकान मे सोना। सरकार !

मु०—नहीं जी, तुम घर जाओ। मैं तो हूँ। मैं कोई बच्चा नहीं हूँ। मैं अकेला ही सोऊँगा। किसी का डर है क्या ? और फिर चौकीदार तो है ही !

रा०—सरकार, नराज होएँगे, सरकार, मै भी यहीं पड़ रहौंगा।

मु०—क्यों, क्या तुम्हारे घर मे कोई नही है ?

रा०—है काहे नाहीं सरकार ? तेजी है, तेजी कै माँ है। ओकरे तबियत सरकार कल्हि से कछु दिक है।

मु०—तब तो तुमको जाना चाहिये।

रा०—हाँ सरकार, बहुत दिक है। मुदा बडे सरकार नराज...।

मु०—नहीं, मै कह दूँगा ! यह क्या वात कि घर में लोग बीमार हों और तुम यहीं पड़े रहो।

रा०—[हाथ जोड़कर] वाह, सरकार आप दीन दयालू हैं। काहे न होंय सरकार ? आप तौ दीन की परवस्ती...

मु०— खैर, यह कोई वात नहीं।

रा०—[हाथ जोडकर] तौ सरकार मैं [रुककर] जाँव ...!

मु०—हाँ, सुबह ज़रा जल्दी आ जाना।

रा०—बहुत अच्छा, सरकार। सरकार की का वात... !

[रामदीन अपना बिस्तरा उठाकर जाने को तैयार होता है।]

मु०—[सोचता हुआ] क्यों जी रामदीन, तुम्हारी शादी कब हुई थी ?

रा०—[संकुचित होता हुआ] हॅ, हॅ. सरकार सादी ? तेज़ी कै माँ की शादी ? सरकार, जमाना गुजर गवा। अब तौ तेजी कै शादी कै फिकर है। सरकार आपई करेंगे। [दाँत निकलता है।]

मु०—अच्छा, बहुत दिन बीत गए ! और रामदीन, तुमने शादी के पहले तेजी की माँ को तो देखा होगा ?

रा०—राम कहो, सरकार, हम तो उहि का तब जाना जब तेजी का जलम होय का वखत आवा। सरकार, भरे घर माँ कौन के का देखत है ? मा-बाप सब्बै तौ रहै। जब लौं तेजी क माँ से मुलाखात का वखत आवै तब लौ घर में अँधियार हौय जात रहा। और सरकार, आपन मेहरिया का मुँह देखै से का ? देखा तौ ठीक, न देखा तौ

ठीक। जब ऊ का अपनाय लिहिन तब सरकार, भली बुरी सब्बै ठीक है। हैं, हैं।

[नम्रता और हास्य का मिश्रण]

मु०—बड़ा ज्ञानी है। और ये शादी लगाई किसने थी ?

रा०—अब सरकार, बापै लगाईन. हमार काहे माँ गिनती ? ऊ हमसे कहवाइन—सब ठीक है। हम हूँ आपन मुँडिया हलाय दिहिन। सादी के बात तौ सरकार बापै के हाथ मे रहा चाही। ऊ कहिन कै रामदीन कै सादी होई हम समझा ठीक है। तौ सादी न करत ? सरकार।

मु०—तुम लोग क्या समझो कि शादी किसे कहते हैं ?

रा०—सरकार, आप लोग पढे लिखे हन। अब आप न जानी तौ का हम जानी ? हमार सादी तो सरकार, गुजर-बसर के लायक है! आप लोगन की सरकार 'बिलाडी-बिलाडी भाट' सादी होवत है। अब तौ सरकारौ की सादी होई। हाँ. [सिर हिलाता है।]

मु०—[दृढ़ता से] मेरी शादी नहीं होगी रामदीन.. अच्छा अब जाओ तुम।

रा०—काहे न होई सरकार !

मु०—कुछ नहीं, तुम जाओ।

रा०—सरकार कै सादी तो अस होई कि सगर दुनिया तरफराय जाई। अच्छा तौ सरकार जाई नू ? राम राम [कमरे मे लगी हुई लक्ष्मी जी की तस्वीर को भी प्रणाम करके जाता है।]

मु०—[व्यंग से] बड़ा भगत है।

[रामदीन के जाने पर मुरारी कुछ क्षणों तक दरवाज़े की ओर देखता हुआ बैठा रहता है। फिर उठ कर दरवाज़ा ऊपर और नीचे दोनों ओर से बन्द करता है। दो लेम्पों में से एक लेम्प बुझा देता है। कुछ देर सोचता है।]

मु०--अब ठीक है। पीछा छूटा शैतान से। यहीं सोना चाहता था। बाबूजी का मुँह लगा नौकर है न? अब बेखटके अपना काम करूँगा। [सोचता है।] मेरी शादी ··शादी होगी! किसी जंगली जानवर से, अब सह नहीं सकता! बाबूजी सोचते क्यों नहीं कि हम लोगो के पास भी दिल होता है! हम लोग भी हसरत रखते हैं! मालूम हो जायगा कि मैं सच कहता था या मज़ाक करता था। मेरी लाश बतलायगी। ठीक है·····आज आत्महत्या करनी ही होगी, तभी मेरा पीछा छूटेगा·····क़िस्मत की बात कि दुकान की सब अफीम खत्म हो जाय लेकिन क्या मुरारी अपने काम में चूक सकता है? एक तोला अलग निकाल कर रख ही तो ली। [मेज़ के ड्राअर में से अफीम निकालता है।] यह है! मैं ग्रेजुएट हूँ। पिता जी के कहने से मैं अपने 'कल्चर' को 'किल' नहीं कर सकता। 'मैरिज--इज़ एन ईवेन्ट इन लाइफ।' यह गुड़ियों की शादी नहीं है। वे दिन गये 'जब रामदीन की शादी हुई थी। [सोचता है।] 'इट इज़ बैटर टु किल वन् सैल्फ दैन टु किल वंस सोल।' बहुत 'रिवोल्ट' किया, लेकिन कुछ नहीं। अब सुबह लोग देखेंगे कि मुरारी अपने विचारों का कितना पक्का है! मेरी लाश की शादी करेंगे उसी अनकल्चर्ड लड़की के साथ। ओफ़, कितना दर्द है! [अपनी माँ की फोटो की ओर देखकर] माँ, तुम तो

दुनियाँ में नहीं हो, नहीं तो मुमकिन है कि अपने मुरारी को बचा सकतीं, अच्छा तो मैं भी सुबह तक तुम्हारे पास पहुँचता हूँ। तो अब······[सोचता है।] खा जाऊँ ? [कुर्सी पर बैठ कर अफीम की पुड़िया खोलता है। थोड़ी देर सोचता है।] नहीं बेंच पर लेटकर खाना अच्छा होगा। लोग समझेंगे कि मैं सो रहा हूँ। जगाने की कोशिश करेंगे। मज़ा आयगा। लेकिन मुझे क्या !! [बेंच पर लेटता है और गोली हाथ में ऊपर उठाता है।] मुरारी, तुम भी अपने विचारों के कितने पक्के हो ! अपने सिद्धांतों के लिए ज़िन्दगी को ठोकर मार दी ! अब खा जाऊँ ? वन् ..टू [उठकर] अरे। मैंने पत्र तो लिखा ही नहीं। मेरे मरने के बाद मुमकिन है पुलिसवाले बाबू जी को तंग करें···! करने दो, मुझे भी तो उन्होंने तंग किया है। [सोचकर] लेकिन नहीं, मरने के बाद भी क्या दुश्मनी ! अच्छा लिख दूँ [अफीम की गोली को मेज़ पर रखकर बैठता है और पत्र लिखता है। पढ़ता है।] 'बाबूजी, आप एक गँवार लड़की से मेरी शादी करने जा रहे हैं। मैंने बहुत विरोध किया लेकिन आप अपना इरादा नहीं बदल रहे हैं। मैं अपने सिद्धांतों की हत्या नहीं कर सकता, अपनी ही हत्या कर रहा हूँ। आपका आदेश तो स्वीकार नहीं कर सका, आप की अफीम अवश्य स्वीकार कर रहा हूँ। क्षमा कीजिए। मुरारी मोहन।' बस, ठीक है। इसी टेबुल पर लैटर छोड़ दूँ। अब चलूँ अपना काम करूँ ! [अफ़ीम की गोली मेज़ पर से उठाता है। उसकी ओर देखते हुए] मेरी अमृत की गोली अफ़ीम ! ए स्कारलेट फ़ेयरी आव् ड्रीम्स !! तेरे व्यापार ने विदेशों में धन बरसा दिया है। आज तेरा यह

व्यापार ! मुझ पर मौत बरसा दे। होमर ने तेरी तारीफ की है। ट्रॉय की सुन्दरी हेलेन ने मेनीलास की शराब में तुझे ही तो मिलाया था। अब तू मेरे ख़ून मे मिल जा। बस, दुनिया ! तुझे मेरा आख़िरी सलाम !! आगे से प्रेम की क़ीमत समझ ! चलूँ...? [हाथ उठाकर] चियरियो ! [बेंच पर लेट जाता है, खटका होता है। मुरारी चौंक कर उठता है।] कौन ? [कोने की ओर देखता हुआ] ये चूहे शैतान किसी को मरने भी नहीं देते। ये क्या समझें कि स्यूसाइड कितनी सीरियस चीज़ है। अच्छा शान्त ! मुरारी अब जा रहा है। [फिर लेट जाता है] वन्...टू... [सोचकर] क्या मैं कुछ डर रहा हूँ ? डर रहा हूँ ? लेकिन मुझे मरना ही होगा। मुझे मरना ही होगा। दरवाज़े पर खट्खट् की आवाज़ होती है [मुरारी उठकर] कौन है ? रामदीन ? [फिर खट्खट् की आवाज़ होती है।] अरे ! बोलता क्यों नहीं ? [फिर खट्खट् की आवाज़] जा, मैं नहीं खोलूँगा [फिर खट्खट् की आवाज़] खोलना ही पड़ेगा ! [अफ़ीम की गोली और ख़त उठाकर मेज़ की दराज़ में रखता है।] ठहर। [मुरारी दरवाज़ा खोलता है। आश्चर्य से] अच्छा, आप कौन ! आइये।

[एक अठारह वर्षीया लड़की का प्रवेश। नाम है विश्व मोहिनी। अस्त-व्यस्त वेषभूषा जैसे—दौड़कर आ रही है। देखने में अत्यन्त सुन्दर। बाल कुछ बिखर कर सामने आ गये हैं। सिर से साड़ी सरक गई है। वस्त्रों में कालेज की 'ध्वनि' है। उद्भ्रान्त-सी है।]

मु०—आप कौन हैं !

वि०—लाला सीताराम जी कहाँ हैं ?

मु०—बाहर गये हुए हैं।

वि०—बाहर गए हुए हैं ? (सोचते हुए कुछ धीरे) अच्छा है, वे नहीं हैं !

मु०—(दुहराते हुए) अच्छा है, वे नहीं हैं ? क्या मतलब ?

वि०—कुछ नहीं।

मु०—किस काम से आप आई हुई हैं ?

वि०—मुझे कुछ अफीम चाहिये।

मु०—आपको ? क्यों ?

वि०—ज़रूरत है। बहुत ज़रूरत है।

मु०—दुःख है, सारी अफीम ख़त्म हो गई। बाबूजी उसी के लिए ग़ाज़ीपुर गये हुए हैं।

वि०—कब तक लौटकर आएँगे ?

मु०—परसों।

वि०—परसों ? बहुत देर हो जायगी। (अनुनय के स्वरों में) थोड़ी भी नहीं है ? कुछ तो ज़रूर होगी। मुझे बहुत ज़रूरत है।

मु०—इस समय ? आधी रात को ?

वि०—हाँ, मेरी माताजी बीमार हैं। अफीम खाती हैं। उनकी सारी अफीम ख़त्म हो गई है। उन्हें नींद नहीं आ रही है। नींद न आने से उनकी तबीयत और भी ख़राब हो जायेगी।

मु०—मुझे बहुत दुःख है, लेकिन अफीम तो नहीं है।

वि०—[प्रार्थना से] देखिये, आपकी मुझ पर बड़ी कृपा होगी

यदि आप खोज कर थोड़ी सी दे दें। इतनी बड़ी दुकान मे क्या थोड़ी सी भी अफीम न होगी?

मु०—[सोचते हुए] अच्छा, बैठिये खोजता हूँ। [मेज़ का दराज़ खोलता है, दराज़ की ओर देखते हुए] आपका परिचय?

वि०—[कुर्सी पर बैठते हुए] परिचय और अफीम से क्या संबन्ध?

मु०—आपका नाम लिखना होगा। अफ़ीम देते वक्त नाम लिखना होता है।

वि०—अच्छा, नाम लिखना होगा? [कुछ ठहर कर] तो फिर मुझे नहीं चाहिये।

मु०—इसमें डरने की क्या बात है? अरे, आप तो अपनी माता जी के लिए ले जा रही हैं। [दराज़ बन्द करता है।]

वि०—[सँभल कर] हाँ; हाँ, मैं उन्हीं के लिए ले जा रही हूँ। लेकिन रहने दीजिए, मैं फिर मँगवा लूँगी।

मु०—लेकिन आप तो कह रही हैं कि आपकी माता जी को अभी अफीम चाहिये। बिना इसके उन्हें नींद ही न आयगी।

वि०—हाँ, नींद नहीं आयगी। ख़ैर, लिख लीजिये मेरा नाम। [धीरे से] फिर मुझे चिन्ता किस बात की?

मु०—क्या कहा आपने?

वि०—कुछ नहीं।

मु०—क्या नाम है आपका?

वि०—विश्वमोहिनी।

मु०—[एक काग़ज़ पर लिखते हुए] नाम तो बहुत सुन्दर है ! क्या आप पढ़ती हैं ?

वि०—जी हाँ, एनी बेसेंट कालेज में सेकंड इयर में पढ़ती हूँ।

मु०—[लिखता है।] अच्छा, आपके पिता जी ?

वि०—कुछ और बतलाने की जरूरत नहीं है। आपके पिताजी मेरे पिताजी को अच्छी तरह जानते हैं। आप दीजिए अफीम, मुझे जल्दी ही चाहिये। माँ की तबीयत ख़राब है। देर हो रही है।

मु०—अच्छा, तो कितनी चाहिए ?

वि०—इससे मालूम होता है कि अफीम काफी है। यही एक तोला बहुत होगी।······हाँ, एक तोला। [सोचती है।]

मु—एक तोले का क्या कीजिएगा ? [आलमारी खोलता है।]

वि०—क्या एक तोले से कम में काम चल जायगा ?

मु०—आप की बातें कुछ समझ में नहीं आ रही हैं।

वि०—अच्छा, तो एक तोला ही दे दीजिए।

मू०—शायद मेरे पास एक ही तोला है। मुझे भी उसकी कुछ ज़रूरत है। पर मालूम होता है 'दाई नीड इज़ ग्रेटर दैन माइन'। अच्छा तो लीजिए। [आलमारी से निकाल कर पुड़िया में एक गोली देता है। आलमारी बन्द करता है।]

वि०—[शीघ्रता से लेकर] धन्यवाद, एक ही तोला है ? कितने की हुई ?

मु०—यों ही ले लीजिए, आपसे कुछ न लूँगा।

वि०—नहीं ऐसा नहीं हो सकता।

मु०—आपने रात में इतनी तकलीफ की है। फिर आपकी माँ की तबीयत ख़राब है, उनके लिए चाहिये। आप से कुछ न लूँगा।

वि०—[टेबुल पर एक रुपया रखते हुए] मैं अपने ऊपर ऋण नहीं छोड़ सकती।

मु०—आप यह क्या कह रही हैं ?

[विश्वमोहिनी एक क्षण में वह गोली खा लेती है। मुरारी हाथ से रोकने की व्यर्थ चेष्टा करता है। विश्वमोहिनी गिरना चाहती है। मुरारी सँम्हाल कर बेंच पर लिटाता है। स्वयं पास की कुर्सी पर बैठ जाता है।]

मु०—[व्यग्रता से] यह क्या किया ?

वि०—[शिथिलता से] आत्म-हत्या !

मु०—अरे तो मेरे यहाँ क्यों ?

वि०—[शांति से] आप पर कोई आँच न आएगी। मैंने पत्र लिख कर रख छोड़ा है। [एक पत्र निकाल कर देती है।] घर में मरने की जगह नहीं है। इतने लोग भरे हैं। चौबीस घण्टों का साथ। डाक्टर बुलवाकर वे लोग मुझे मरने न देते। इसलिए आपके यहाँ आना पड़ा।

मु०—मैं भी तो डाक्टर बुलवा सकता हूँ ?

वि०—ओह, ईश्वर के लिए—मेरे लिए—मत बुलवाइये ! मत बुलवाइये !!

मु०—[लापरवाही से] न बुलवाऊँ ? आपका यह पत्र पढ़ सकता हूँ ? [विश्वमोहिनी आँखों से स्वीकृति देती है।]

मु०—[पत्र पढ़ता है ।] 'पिता जी ! धृष्टता क्षमा कीजिये । मेरे विवाह के लिए आपको अपनी सारी ज़मींदारी बेचनी पड़ती । ६०००) आप कहाँ से लाते ? आप तो भिखारी हो जाते । इससे अच्छा यही है कि मैं भगवान् की शरण में जाऊँ । अब आप निश्चिंत हो जाइए । आह, यदि मेरे बलिदान से हिन्दू समाज की आँखें खुल सकतीं ! आपकी, विश्वमोहनी ।' ओह, [गहरी साँस लेकर] कितनी भयानक बात !

वि०—क्षमा कीजिये । लेकिन मेरी मृत्यु की आवश्यकता थी । हिन्दू समाज बहुत भूखा है । [कुछ रुककर] ओह, आप कितने कृपालु हैं । मेरी अन्तिम इच्छा आपने पूरी की । मेरी आपसे एक और प्रार्थना है ।

मु०—बतलाइये ।

वि०—आपका विवाह हो गया ?

मु०—जी नहीं ।

वि०—तो सुनिये, जब आप विवाह करें तो अपने विवाह में दहेज़ का एक पैसा न लें । किसी बालिका के पिता को भिखारी न बनावें । आप मेरी प्रार्थना मानेंगे ? मेरी अन्तिम प्रार्थना मानेंगे ?

मु०—मानूँगा, ज़रूर मानूँगा ।

वि०—ओह, आप कितने अच्छे हैं ! मैं अपने प्रथम और अन्तिम मित्र का नाम जान सकती हूँ ?

मु०—धन्यवाद ? मेरा नाम मुरारी मोहन है ।

वि०—कितना अच्छा नाम है ! मुरारी मोहन...मुरारी मोहन......विवाह मे एक पैसा न लेना, मुरारी मोहन !

मु०—लेकिन मै विवाह करना ही नही चाहता ।

वि०—क्यों ?

मु०—[सोचता है ।] जब आपने अपना सारा रहस्य मेरे सामने खोल दिया है तब अपनी बात कहने में मुझे भी क्या संकोच ? देखिये, पिताजी मेरा विवाह एक बेपढ़ी और गँवार लड़की से करना चाहते हैं ।

वि०—अपने पिताजी को आप समझा नहीं सकते ?

मु०—पिताजी समझना ही नहीं चाहते । इसीसे मैं भी आज ही—अभी ही—आत्म-हत्या करने जा रहा था । इसी बैंच पर जिस पर आप लेटी हैं ।

वि—[चौंक्कर] तो मैं···?

मु०—[बीच ही में] मैं तो मरने जा ही रहा था कि आप आ गईं ।

वि०—आत्म-हत्या न करना मुरारी मोहन ! मैं ही अकेली काफी हूँ । [कुछ रुक कर] लेकिन अफीम, अफ़ीम का कुछ असर मुझे मालूम नही पड़ रहा अभी तक ?

मु०—तो जल्दी क्या है ?

वि०—मैं जल्दी मरना चाहती हूँ । अफीम का असर क्यों नहीं हो रहा ?

मु०—न होने दीजिए ।

वि०—अफीम खाऊँ और उसका असर न हो ?

मु०—[लापरवाही से] असर क्यों होगा ? आपने अफीम खाई ही कहाँ हैं ?

वि—[चौंक कर] नहीं ? अरे ! तो क्या आपने मुझे अफीम नहीं दी ?

मु०—नहीं। मैं जानता था कि आप आत्म-हत्या करने जा रही हैं। मैं ऐसे को अफ़ीम क्यों देता ? मैंने नहीं दी।

वि०—[विस्फारित नेत्रों से] तो फिर क्या दिया ? [उठकर बैठ जाती है।]

मु०—काली हर्र की एक गोली। [आल्मारी की ओर सकेत करता हुआ क्रीड़ा पूर्वक] बाबू जी की दवाओं की आल्मारी से।

वि०—[किंचित क्रोध से] आप बड़े वैसे हैं ! आप मेरा अपमान करना चाहते हैं ? मै मरना ही चाहती हूँ। मुझे अफीम चाहिये।

मु०—[जैसे बात सुनी ही नहीं] अफीम के बदले हर्र की गोली ! ज़रा मेरी सूझ तो देखिये !

वि०—रखिये आपने पास आप अपनी सूझ। इस समय शहर की सब दूकाने बन्द हो गई हैं नहीं तो मैं आपकी अफीम की परवा भी न करती।

मु०—तो न करें।

वि०—लेकिन मुझे अफ़ीम चाहिए।

मु०—[खड़े होकर] देखिए ! सिर्फ़ एक तोला अफ़ीम बाक़ी है जो दराज़ में रखी हुई है। [दराज़ की ओर संकेत] अगर मैं वह आपको दे दूँ तो फिर मैं ['मैं' पर ज़ोर] आत्म-हत्या किस चीज़ से करूँगा ?

वि०—आप ? आप आत्म-हत्या नहीं कर सकते। मैं करूँगी।

मु०—नहीं मैं करूँगा।

वि०—यह हो ही नहीं सकता। आपकी परिस्थितियाँ सुधर सकती हैं, मेरी नहीं।

मु०—नहीं आपकी परिस्थितियाँ सुधर सकती हैं, मेरी नहीं। उठाइये, अपना यह रुपया।

वि०—नहीं, दीजिये मुझे अफीम।

मु०—नहीं दूँगा।

वि०—नहीं देंगे तो मैं······

मु०—क्या करेंगी आप ?

वि०—[मुट्ठी बाँधते हुए विवशता से] ओह, मैं क्या करूँ ! [उठकर दराज़ खोलना चाहती है।]

मु०—[रोकते हुए] मुझे माफ कीजिये। ज़रा आप अपने को सँम्हालिये। 'हैव पेशेन्स गुड गर्ल।' सब मामला सुलझ जाएगा।

वि०—कैसे ? [बैठती है।] नहीं सुलझ सकता। संसार स्वार्थी है, पापी है। नहीं।

मु०—सारा संसार स्वार्थी नहीं है, पापी नहीं है। शान्त हो देखिये। उठाइये, अपना यह रुपया।

वि०—अच्छा, आप आत्म-हत्या तो न करेंगे ?

मु०—तो क्या करूँ ?

वि०—मैं क्या जानूँ ?

मु०—[विश्वमोहिनी की आँखे पढ़कर कुछ देर रुक कर] 'एक्स-क्यूज़ मी, आई टच्ड युअर बॉडी !'

वि०—ओ ! इट् वाज़ माई फ़ाल्ट !

मु०—दैट्स आल राइट । आपने क्या बतलाया ? आप सेकंड इयर में पढ़ती हैं ? [विश्वमोहनी सिर हिलाकर स्वीकार करती है ।]

मु०—तो आप एक काम कर सकती हैं । आपके पिता जी मेरे पिता जी को जानते ही हैं । उनके द्वारा मेरे पिता जी से कहला दें कि अगर मैंने कभी शादी की तो मैं बिना दहेज़ के करूँगा । यदि ऐसा न होगा तो इस समय तो नहीं उस समय अवश्य आत्म-हत्या कर लूँगा ।

वि०—अवश्य । मुझे विश्वास है कि मेरे पिता जी का कहना आपके पिताजी ज़रूर मान जायँगे । नहीं तो उनको ऐसी घटनाएँ देखने के लिए तैयार रहना चाहिये ।

मु०—अच्छा तो उठाइये, अपना यह रुपया । हर्र की गोली की क्या क़ीमत ?

वि०—[रुपया उठाकर] अच्छा लीजिये । [सोचती है ।] अच्छा यह बतलाइये कि आपको यह कैसे मालूम हुआ कि मैं आत्म-हत्या करने के लिए अफीम ले रही हूँ । मैंने तो अपनी माँ की बीमारी की ही बात कही थी ।

मु०—मैं जानता था। आपकी उखड़ी-उखड़ी-सी बातें। नाम देने से इन्कार करना। वग़ैरह, वग़ैरह। कुछ इस ढङ्ग से आपने कहा कि मुझे शक हो गया। अफ़ीम खाने के लिए अनुभव की ज़रूरत है। कच्चा आदमी खा ही नहीं सकता, मैं जानता हूँ। मैने आपको हर्र की गोली दे दी, आपने ले ली। अफीम और हर्र मे कोई तमीज़ ही नहीं।

वि०—और आपको वक्त पर हर्र की गोली मिल भी गई!

मु०—मिलती क्यों न? आत्म-हत्या करने वालों से कभी कभी ईश्वर भी डर जाता है। [हास्य]

वि०—[विनोद से] आप बड़े वैसे हैं।

मु०—कैसे ?

वि०—मुरारी मोहन जैसे।

मु०—अच्छा, आपको मेरा नाम याद है?

वि०—अपने नाम को भूल जाऊँ, लेकिन आपके नाम को नही भूल सकती। आपने इतना बड़ा उपकार जो किया है। अच्छा देखिये, मैं अपने पिताजी से कहकर आपके पिताजी को समझा दूँगी।

मु०—क्या?

वि०—कि वे आपकी शादी किसी पढी-लिखी लड़की के साथ करेंगे।

मु०—[रहस्य दृष्टि से देखता है।]

वि०—जाइए, आप बहुत बुरे हैं।

[चौकीदार की आवाज़ सड़क पर होती है—'जागते रहो।']

मु०—चौकीदार कह रहा है—जागते रहो। और कितनी देर जागते रहें ? ग्यारह तो बज गए होंगे।

वि०—[मुस्कुरा कर] जीवन भर—

मु०—जीवन ! कितना बड़ा जीवन ! दुःख दर्द से भरा हुआ। पढ़ने की चिन्ता, कमाने की चिन्ता, स्त्री की चिन्ता, प्रेम की चिन्ता · [चौंककर] ओह, मैं कहाँ की बात ले बैठा। हाँ, मैं आपको मकान भिजवा दूँ।

वि०—चली जाऊँगी। नौकरनी को बाहर बरामदे में छोड़ आई हूँ।

मु०—शायद इसलिए कि आपकी आत्म-हत्या की खबर लेकर घर जाती।

वि०—हाँ, लेकिन जैसा मैंने कहा—आप पर आँच न आती। उसकी गवाही और मेरा पत्र आपको निरपराध ही साबित करते।

मु०—तो क्या आपकी नौकरनी को मालूम था कि आप आत्म-हत्या करने जा रही हैं ?

वि०—बिलकुल नहीं। लेकिन वह यह कह सकती कि मैं यहाँ अपने मन से आई थी। आप तो निरपराध ही रहते। यही साबित होता।

मु०—धन्यवाद। अब क्या साबित होगा ?

वि०—यही आप इतने कृपालु हैं ··

मु०—[बीच ही में] कि आधी रात तक किसी को रोक सकता हूँ। अच्छा ठहरिये। मैं इन्तजाम करता हूँ। [पुकारता है।] चौकीदार !

चौ०—[बाहर से] आया हुज़ूर !

वि०—चौकीदार कों क्यों पुकार रहे हैं।

मु०—आपको गिरफ़्तार करने के लिए, पुलिस में ख़बर भेजना है। आप आत्म-हत्या करना चाहती थीं।

वि०—बुलवाइये पुलिस को। मैं भी आपको गिरफ़्तार करा दूँगी। आप भी आत्म-हत्या करना चाहते थे। अफीम आपके पास है या मेरे पास !

मु०—मेरी तो अफीम की दूकान ही है। साइनबोर्ड देख लीजिए [साइनबोर्ड की तरफ इशारा करता है।]—लाला सीताराम—अफीम के व्यापारी [चौकीदार का प्रवेश।]

चौ०—[सलाम करता है।] कहिये हुज़ूर !

मु०—जोखू ! पहरा देने के लिए तुम आ गये ?

चौ०—हाँ, हुज़ूर। ग्यारह बज गये।

मु०—देखो, इन्हें इनके घर पहुँचा दो। ये अपना घर बतला देंगी। बाहर बरामदे में इनकी नौकरनी होगी। उसे भी लेते जाना। आज दावत में कुछ देर हो गई।

चौ०—बहुत अच्छा, हुज़ूर ! [सलाम करता है।]

वि०—मैं ख़ुद चली जाऊँगी।

मु०—ओ, मुझे ख़ुद साथ चलना चाहिए।

वि०—(लज्जित हो) मेरा मकान थोड़ी ही दूर है। आपको ज़्यादा तकलीफ न होगी।

मु०—कुछ तकलीफों में आराम ही मिलता है। जोखू! तुम जाओ।

चौ०—हुज़ूर! एक बात है।

मु०—क्या?

चौ०—हुज़ूर! पहरा देते देते थक जाता हूँ। कुछ अफीम हो तो मिल जाय।

मु०—कितनी चाहिये?

चौ०—हुज़ूर जितनी दे दें।

मु०—एक तोला भर है।

चौ०—[ख़ुश होकर] क्या कहना हुज़ूर! एक हफ़्ते तक चंगा हो जाऊँ।

मु०—[मेज़ की दराज़ खोल अफ़ीम निकाल कर देते हुए] अच्छा लो, होशियारी से पहरा देना।

चौ०—[सलाम करता है।] अब हुज़ूर मैं अकेला सारे शहर का पहरा दे सकता हूँ। [बाहर जाता है।]

वि०—इसका नाम नहीं लिखा?

मु०—दूकान का पहरेदार है। जाना-पहचाना हुआ आदमी, फिर नाम तो बड़े आदमियों के लिखे जाते हैं।

वि०—क्योंकि वे ही ज्यादातर आत्म-हत्या करने की बात सोचते हैं।

मु०—[लज्जित हो कर] जाने दीजिये, इन बातों को। [गहरी साँस लेकर] चलो, पीछा छूटा अफीम से। छोटी-सी चीज़, पर कितना बड़ा असर? सिर्फ, एक तोला अफीम!

वि०—[मुस्कुराकर] और उसकी भी क़ीमत नहीं मिली।

मु०—मिली न! बहुत मिली, आप मिल गईं?

[विश्वमोहिनी प्रसन्नता में लज्जा मिला देती है। दोनों जाने को प्रस्तुत हैं। परदा गिरता है।]

५

रेशमी टाई

[सितम्बर १९३८]

पात्र-परिचय

१ नवीनचन्द्र राय—इंश्योरेंस कंपनी का एजेण्ट और साम्यवाद का विश्वासी। आयु ३० वर्ष

२ लीला—उसकी सुशीला स्त्री। आयु २२ वर्ष

३ सुधालता—स्वयं सेविका। आयु १८ वर्ष

४ चन्दन—नवीनचन्द्र का नौकर। आयु ४५ वर्ष

इस नाटक का सर्वप्रथम अभिनय लक्ष्मी भवन नरसिंहपुर में १५ सितम्बर को श्री रामसनेही वर्मा बी० ए० एल-एल० बी० के निर्देशन में हुआ। भूमिका इस प्रकार थी :

नवीन चन्द्र राय—	श्री रामानुज प्रसाद वर्मा
लीला—	श्री शिवनाथ शुक्ल
चन्दन—	श्री चन्द्र प्रकाश वर्मा बी० ए०
सुधालता—	श्री प्रेमशङ्कर

दृश्य—नम्बर २० स्टेनली स्ट्रीट।

समय—सन् १९३८ का खादी-सप्ताह। प्रातःकाल।

एक सुसज्जित कमरा। ड्राइंग और ड्रेसिंग रूम जैसे मिल गए हों। एक ओर कार्ल मार्क्स और दूसरी ओर ग्रेटा गार्बो के विशाल चित्र। बग़ल में एक बड़ा शीशा। कमरे के एक कोने मे एक टेबुल है, जिस पर कुछ पुस्तकें और काग़ज़ रखे हुए हैं। दूसरी ओर एक आलमारी है, जिसमे नीचे दो दराज़ हैं। बीचों-बीच एक टेबुल है, जिस पर फूलदान है और उसमें गुलदस्ता लगा हुआ है। आमने-सामने दो कुर्सियाँ पड़ी हैं। ज़मीन पर एक मख़मली फर्श बिछा हुआ है। दीवाल पर एक घड़ी, जिसमें ८ बजकर १० मिनट हो गए हैं। बग़ल मे कैलेंडर।

नवीनचन्द्र नेपथ्य की ओर बग़ल में दरवाज़े तक बढ़ कर बड़े ध्यान से देख रहा है।

नवीन—[दरवाज़े की ओर धीरे-धीरे बढ़कर देखता हुआ] इतनी ठंड मे स्नान…! पूजा…! [एकटक देखते हुए रुककर] फ़ेथफुल वाइफ…स्वीट लीला! [फिर रुककर लौटते हुए अपनी ओर देखकर] और मैं? [बीच में रखी हुई टेबुल के समीप आता है। दराज़ खोल कर एक बंडल निकालता है। उसे हाथों से तौलता है, फिर छोटे दराजों से कैंची निकाल कर बंडल की रस्सी काटकर उसे खोलता है।

दो रेशमी टाई निकालता है। एक टाई को उलट-पलट कर ग़ौर से देखता है। हाथ मे लेकर झुलाकर, कुछ ऊपर उठाकर देखते हुए] व्यूटीफ़ुल ! [दूसरे हाथ में लेकर] एस्प्लेनडिड ! [चित्र की ओर देखकर] लाइक दैट अव् ग्रेटा गार्वो ! शैल आइ ट्राइ ? [शीशे के समीप जाकर ओंठ से सीटी बजाता हुआ टाई पहनता है। हेराल्ड वाइल्ड का 'आई हीयर यू कालिंग मी' गाना गुनगुनाते हुए टाई की नाट् बाँधता है। रुककर खिड़की के पास जाते हुए] अरे चन्दन, ओ चन्दन ! [खिड़की से दाहिनी ओर झाँकते हुए] अरे, आज चा-वा लाना है या नहीं ?

च०—[[नेपथ्य से] लाया हुज़ूर।

न०—[टाई की नाट् ठीक करते हुए] इन कम्बख्तों का सूरज नौ बजे निकलता है। अभी तक चा तैयार नहीं हुई। रासकल्स, ईडियट्स !

[चन्दन का चा लेकर प्रवेश]

न०—[टाई पर हाथ फेरते हुए] क्यों रे, जब तक मैं चा न मँगाऊँ, तब तक आराम से बैठा रहता है। हाथ पर हाथ धरे ?

च०—[बीच वाली टेबुल पर ट्रे रखते हुए] हुज़ूर, टोस्ट में मक्खन लगा रहा था।

न०—और मैं तेरे सिर पर चपत लगाऊँ तो ? ईडियट, [घड़ी की ओर देखते हुए] आठ बज गए, जानता है ?

च०—हुज़ूर, आज दिन मालूम नहीं पड़ा। ख़ूब कुहरा पड़ रहा था हुज़ूर।

न०—तेरी अक्ल पर ? बदमाश, चा किस लेबिल की डाली ? पीले की या लाल की ?

च०—हुज़ूर, लाल की।

न०—हूँ, [शान्त होकर] उनकी पूजा ख़तम हो गई ?

ली०—[आते हुए] हो गई, आ रही हूँ। सुबह से यह कैसा ग़ुस्सा ?

न०—[कुर्सी पर बैठते हुए] ग़ुस्सा न आवे ? आठ बज जाते हैं, और चा नहीं आती ! [झल्लाकर सिगरेट जलाता है।]

ली०—[सन्तोष देते हुए] सचमुच नाराज़ी की बात है ! मैं कल से और भी सुबह उठूँगी।

न०—तुम क्यों उठोगी ? ये नौकर किसलिए हैं ?

ली०—[मुस्कुराते हुए कुर्सी पर बैठ कर] ग़ुस्सा दिलाने के लिए। इस ठंड में गर्मी लाने के लिए !

न०—[कुछ मुस्कुरा कर, चन्दन की ओर देखते हुये] ईडियट्। जाओ, बाहर बैठो। [चन्दन चला जाता है।]

ली०—[शान्ति से] इतने नाराज़ होकर बाहर जाओगे तो फिर केस कैसे मिलेंगे ? इसी महीने के आख़ीर तक तो आपको २५ हज़ार इश्योर करने हैं। आज तारीख़ १८ हो चुकी। [कैलेंडर पर दृष्टि।]

न०—[झल्ला कर] ऐसी हालत में कर चुका। [चा की केटली उठाता है।]

ली०—नहीं लाओ, मैं चा बनाऊँ। [केटली ले लेती है।] तुम तो पच्चीस क्या, पचास हज़ार कर लोगे। [प्याले में चा डालते हुए] अब लोग इंश्योरेन्स की ज़रूरत समझने लगे हैं। १०-१५ बरस पहले तो लोग समझते थे कि इंश्योरेन्स अपशकुन है। मरने की बात अभी से सोचते हैं। [चा का रङ्ग देखते हुए] देखो, कितना अच्छा कलर है!

न०—[प्याले को देखकर] हूँ।

ली०—सचमुच इस ठंड में चा एक चीज़ है। कंपनी वालों को ठंड में चा की क़ीमत बढा देनी चाहिये। क्यों?

न०—कहीं अपनी यह राय किसी कंपनी को भेज भी न देना।

ली०—तो मुफ़्त में तो भेजूँगी नहीं! चीनी?

न०—डेढ़ चम्मच।

ली०—[डेढ़ चम्मच चीनी डालकर दूध मिलाने से पहले] देखो, चा का रङ्ग! तुम्हारी रेशमी टाई से मिलता-जुलता। [रुककर प्रश्न के स्वर में] क्या बाहर जाने को तैयार हो गए? [दूध डालती है।]

न०—नहीं तो।

ली०—यह सुबह से टाई पहन रखी है!

न०—[चा को ओंठो से लगाते हुए] यों ही देखना चाहता था, कैसी लगती है। नयी है—कल ही लाया हूँ!

ली०—[चा पीते हुए प्रशंसा के स्वरों में] अच्छी लगती है!

न०—[उमङ्ग से] अच्छी? बहुत अच्छी। ग्रेटा गार्बो जैसी- देखो······[चित्र की ओर संकेत करता है।]

ली०—[ग्रेटा के चित्र की ओर देखकर] सचमुच इस समय आप ग्रेटा जैसे ही मालूम हो रहे हैं।

न०—[झेंपकर] हिश्, और सुनो। मुफ्त–बिल्कुल मुफ्त !

ली०—कैसे ? क्या सिगरेट के कूपन-प्रेज़ेण्ट में ?

न०—[सिर हिलाकर] ऊँ–हूँ !

ली०—फिर किसी ने प्रेजेण्ट की होगी ?

न०—[चा का घूँट लेकर] ऊँ–हूँ !

ली०—अच्छा, मैं समझ गई। [रुककर] दद्रुगजकेसरी का उपहार !

न०—[हँसकर] पागल !

ली०—फिर क्लीयरेंस सेल में !

न०—फेल।

ली०—[हँसकर] अच्छा, इस बार ठीक बतलाऊँ। एक रुपये मे १४४ चीज़ों के साथ डमी वाच और टाई !

न०—[मुस्कराकर] नानसेन्स, [सिगरेट का धुँआ छोड़ता है।]

ली०—फिर मैं नहीं समझी।

न०—लो समझो। मैं कल गया था मदनलाल खन्ना के यहाँ। बहुत सी 'वेराइटीज' देखीं। दो टाईज़ पसन्द की। ली एक ही। लेकिन उसने दोनों टाईज़ बण्डल मे बाँध दीं और दाम एक ही के लिए।

ली०—[चा का घूँट लेते हुए] तो यह टाई तुम्हें लौटा देनी चाहिए।

न०—क्यों लौटा देनी चाहिए? आई हुई लक्ष्मी को ठुकरा देना चाहिए? जो चीज़ आप से आप आ जाय—आ जाय।

ली०—यह चोरी नहीं है?

न०—चोरी क्यों? मैं उसके सामने लाया हूँ। उसने अपने हाथ से बंडल बनाया।

ली०—पर दाम तो आपने एक ही के दिए।

न०—उसने भी दाम एक ही के लिए?

ली०—नहीं, यह ठीक नहीं। इस तरह की भूल तो अक्सर हो ही जाती है।

न०—तो जो भूल करे, 'सफर' करे। [दूसरी सिगरेट जलाता है।]

ली०—और अगर मदनलाल कहला भेजे कि एक टाई आपके साथ ज़्यादा चली गई है, तो?

न०—[स्वतन्त्रता से] तो मै कहला दूँगा कि मैं क्या जानूँ? अपनी दूकान में देखो। कहीं किसी कपड़े में लिपटी पड़ी होगी।

ली०—[रुष्ट होकर] यह बात आपके स्वभाव से अब तक नहीं गई। जब आप पढ़ते थे, तब भी किताबों के ख़रीदने में आप ऐसी ही हाथ की सफाई दिखलाते थे।

न०—[सिगरेट का धुँआ छोड़कर] और वे लोग हमे कितना लूटते हैं! यह भी तो सोचो—

लीला—रोज़गार करते हैं! न कमायें तो खायें क्या?

न०—[व्यङ्ग से] न कमाये तो खायें क्या ? हमसे एक के चार वसूल करते हैं ! ऐसे हैं ये कमाने वाले कमीने पूंजीपति । इन पूँजीपतियों की यही सज़ा है । जानती हो, कार्ल मार्क्स ने क्या लिखा है ? फ़िलासोफ़र्स हिदरटू हैव ओनली इण्टरप्रेंटेड दि वर्ल्ड इन वेरियस वेज़, दि टास्क इज़ टु चेञ्ज इट्। इस संसार को बदलना है ।

ली०—यह सिद्धान्त आपने ख़ूब निकाला !

न०—मेरा सिद्धान्त क्यों, यह तो सोशलिज्म है। डायलेक्टिकल मैटीरियलिज़्म ।

ली०—अपने दुर्गुणों को सोशलिज्म न बनाइए। नहीं तो देश का एक दम ही उद्धार हो जायगा ।

न०—ख़ैर, यह टाई तो इस समय मिस्टर नवीनचन्द्र राय एम० ए० के कंठ की शोभा बढा रही है...और चा दूँ ? तुमने चा बहुत थोड़ी पी ।

ली०—धन्यवाद ! मैं पी चुकी ।

न०—[पुकारकर] चन्दन, यह ले जाओ ।

च०—[नेपथ्य से] आया हुज़ूर ।

ली०—यह टाई चाहे जितनी अच्छी हो, लेकिन [चन्दन का प्रवेश] आज काफी ठंड है । कुहरा बहुत छाया था। ऐसा मालूम होता था कि आज सूरज निकलेगा ही नहीं। क्यों चन्दन ?

च०—[प्रसन्न होकर] जी हाँ, हुजूर, खूब कुहरा पड़ रहा था।

ली०—[उठकर] अच्छा, तो मैं ज़रा गरम कपड़े पहन लूँ । [प्रस्थान ।]

च०--[ट्रे ले जाते हुए] हुजूर, अभी-अभी एक लड़की आई है। कुछ कपड़े लिये हुए है।

न०--[भौंहें सिकोड़ कर] लड़की है?

च०--हाँ, हुजूर, लड़की है। बेचना चाहती है हुजूर। अगर हुकुम हो तो--

न०--[सोचते हुए] अभी नहीं। मैं ज़रा विक्टोरिया पार्क जाऊँगा। पाँच मिनट के लिए। [सोचकर] ऐ...? अच्छा भेज दे।

[चन्दन का प्रस्थान। नवीन टाई के झूलते हुए छोर को हाथ में लेकर बार-बार झुलाकर देख रहा है। सुधालता का प्रवेश। खद्दर की वेष-भूषा। उसके हाथों में खद्दर का एक गट्ठर है। आते ही गट्ठर को ज़मीन पर रखकर दोनों हाथ जोड़ते हुए--]

वन्देमातरम्

न०--[सिर हिला कर] नमस्ते। कहिए?

सु०--मेरा नाम सुधालता है। मैं स्वयसेविका हूँ। खद्दर बेचना चाहती हूँ।

न०--[दुहराकर] खद्दर?

सु०--जी हाँ। कल से खद्दर-सप्ताह प्रारंभ हो गया है। कुछ खद्दर न ख़रीदियेगा?

न०--खद्दर? नहीं, इस समय तो नहीं, मेरे पास काफी कपड़े हैं। फिर खद्दर में कोई क्वालिटी भी तो नहीं है। नो डिज़ाइन। और आज पहनो--कल मैला।

सु०—[अनुरोध के स्वर में] आप लोगों को तो पहनना चाहिए। हाथ का कता और हाथ ही का बुना पहनने में कितना सन्तोष···।

न०—इस सायन्स की 'एज' मे गाधी जी का चरखा। [मुस्कुरा कर] ठीक है, एरोप्लेन के रहते हुए बैल गाड़ी से जल्दी पहुँचने की बात ··।

सु०—यह तो स्वावलम्बन की शिक्षा का एक साधन-मात्र है। उस रोज़ आपने भी तो जवाहर पार्क में एक लेक्चर दिया था···!

न०—मैंने तो सोशलिज़्म के सिद्धान्त बताए थे।

सु०—जी हाँ, पर लेक्चर बड़ा जोशीला था।

न०—[प्रसन्न होकर] अच्छा, आपने सुना था?

सु०—जी हाँ, मैं तो वहीं पास खड़ी थी। पिन ड्राप साइलेंस थी। जब आपका लेक्चर ख़त्म हुआ, तो लोग कह रहे थे कि अगर ऐसा लेक्चर सुनने के लिए मिले, तो हम लोग रोज़ यहाँ इकट्ठे हो सकते हैं।

न०—[प्रसन्नता से] अच्छा?

सु०—कुछ लोग तो आपके लेक्चर की बहुत सी बातें लिखते भी जा रहे थे।

न०—अच्छा, मैंने यह नहीं देखा!

सु०—आप तो लेक्चर दे रहे थे। अच्छी भीड़ थी। ऐसा लेक्चर बहुत दिनों से नहीं सुना था।

न०—[नम्रता बतलाते हुए] मैं तो किसी तरह अपने विचार प्रकट कर लेता हूँ। बस, यही मुझे आता है। अच्छा, ख़ैर आपके पास कैसे डिज़ाइन्स हैं ?

सु०—[प्रसन्न होकर] देखिये। बहुत तरह के हैं। [गट्ठर खोलती है। एक थान दिखलाते हुए] यह गांधी आश्रम अहमदाबाद का है। चैक। दस आने गज़। बहुत अच्छा। जितना धुलेगा, उतना ही साफ़ आवेगा।

न०—[हाथ में लेते हुए] अच्छा है। कुछ खुरदरा है। यों तो......

सु०—[दूसरा थान लेकर] यह मेरठ का है। इससे अच्छा सूत तो इस डिज़ाइन का कहीं मिलेगा ही नहीं। सिर्फ़ एक रुपया गज़ है।

न०—[हाथ में लेकर देखता है।] हूँ।

सु०—और यह देखिए पीलीभीत का। आपके लायक़। सवा रुपया गज़। इसमें आपका सूट बहुत अच्छा बनेगा। आप के सूट में तो सिर्फ़ सात गज़ ही लगेगा ?

न०—हाँ, नहीं तो क्या ? यही सात गज़।

सु०—तो फिर इसे ख़रीद लीजिये। दूँ सात गज़ ?

न०—है तो अच्छा ! सबसे अच्छा यही है। लेकिन...और इससे अच्छा डिज़ाइन नहीं ?

सु०—इससे अच्छा डिज़ाइन दो-तीन दिन में आ जायगा।

न०—तो फिर तभी न लाइए ?

सु०--उस वक्त भी लाऊँगी। अभी भी ले लीजिए। क्या इनमें कोई भी ठीक नहीं है?

न०--हाँ, ठीक तो है, पर.. कुछ ठीक नहीं है।

सु०—यों पहनने की इच्छा हो तो ठीक है, नही तो कुछ भी ठीक नहीं।

न०--फिर कभी आइये।

सु०—तो क्या मैं निराश होकर जाऊँ? इधर आपका इश्योरेन्स बिज़नेस भी तो चल निकला है। अब तो काफी रुपया आता होगा।

न०—बात यह है कि इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। बिज़-नेस चल भले ही निकले, लेकिन मुसीबत यह है कि कई दोस्तों की लाइफ इंश्योर करने से उनकी प्रीमियम मुझे अपने पास से देनी पड़ जाती है। उनके पास जब रुपये होंगे तब कहीं वे मुझे देंगे। इसी महीने मे क़रीब ३००) रु० अपने पास से देने पड़े।

सु०--ठीक है, लेकिन खादी-सप्ताह मे आपको कुछ लेना ही चाहिए। देखिए, शहर में मैंने दो दिनों में ७५ रु० की खादी बेच डाली।

न०—ख़ैर, अभी तो पाँच दिन बाक़ी हैं। फिर आइए। उस समय तक आपके पास नये डिज़ाइन्स भी आ जावेंगे।

सु०—तो फिर मैं ऐसे ही वापस......?

न०—फिर आइये। मुझे इस समय ज़रा विक्टोरिया पार्क जाना है।

सु०—अच्छी बात है। जल्दी मे कपड़ा ख़रीदना भी नहीं चाहिए। मैं फिर दो-तीन दिन बाद आऊँगी।

न०—हाँ [अनिश्चित रूप से] फिर देखूँगा।

सु०—[गट्ठर बाँधते हुए] अच्छा फिर आऊँगी। जब आपको ये पसन्द नहीं, तो फिर इन्हें मैं आपको देना भी पसन्द नहीं करूँगी। अच्छा, [हाथ जोड़कर] वन्दे।

[नवीन सिर हिलाकर हाथ जोड़ते है। उसकी ओर ग़ौर से देखते हैं। सुधा जाती है, पर फिर बाहर से लौटकर—]

मैं एक विनय करना चाहती थी।···मैं···

न०—हाँ, कहिये।

सु०—मै १४ नं० स्टेनली स्ट्रीट में कपड़ा बेंचकर वहीं अपना गज़ भूल आई। आपका मकान तो शायद नं० २० है?

न०—हाँ।

सु०—तो आपको कोई आपत्ति तो न होगी, अगर मैं अपना गट्ठर यहीं छोड़ जाऊँ? ५-१० मिनट में ले जाऊँगी। वहाँ से अपना गज़ ले आऊँ। रास्ते में यह गट्ठर व्यर्थ क्यों ढोऊँ? और फिर मुझे आगे ही जाना है।

न०—[स्वीकृति से सिर हिला कर] नहीं, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आप रख जाइये। अगर मैं आपके आने तक भी आ सकूँ, तो मेरा नौकर चन्दन आपको यह गट्ठर दे देगा। मैं नौकर से कह दूँ [पुकार कर] अरे ओ चन्दन!

च०—[आकर] जी हुजूर—

न०—देखो, अगर मैं यहाँ न रहूँ तो यह गट्ठर इन्हें दे देना। इनका नाम श्रीमती सुधालता है। समझे?

च०—बहुत अच्छा, हुजूर।

न०—[सुधा से] ठीक?

सु०—धन्यवाद। [प्रस्थान।]

[नवीन सिगरेट जलाता है। उसकी नज़र लीडर पर पड़ती है।] अच्छा? आज का पेपर पढ़ ही नहीं पाया! देखूँ! [लीडर देखता है, एक मिनट तक पन्ने लौटने पर] कोई ख़ास बात नहीं। [लीडर के पृष्ठ पर विज्ञापन देखकर] अच्छा? टूटल टाईज़—प्राइस रुपी वन् एट् ईंच। मदनलाल ने मुझसे वन् ट्वैल्व लिए। फ़ूल! [सोचता है। उसकी दृष्टि खद्दर के गट्ठर पर पड़ती है। वह धीरे से उठता है। गट्ठर खोलता है। उसमें से एक थान निकालता है। उसे कुछ देर देखता है, फिर सोचते हुए उसे खोलकर देखता है। अपने कोट पर रख-कर सूट का अनुमान करता है। सिर हिलाकर सोचते हुए आलमारी के दराज़ में बन्द कर देता है। फिर चुपचाप आकर गठरी उसी तरह बाँध देता है। और लौटकर अख़बार पढ़ने लगता है। कभी आलमारी को देखता है, कभी खद्दर के गट्ठर को। लीला का प्रवेश।]

ली०—[नवीन को देखकर] आप तो शायद विक्टोरिया पार्क जानेवाले थे?

न०—हाँ, ज़रा पेपर पढ़ने लगा। [सँभलकर] अब जा रहा हूँ।

ली०—कोई ख़ास ख़बर?

न०—ट्टल टाई की क़ीमत वन् एट् है। मदनलाल ने मुझसे वन् ट्वैल्व लिए।

ली०—[मुस्करा कर] क्या यह ख़बर छपी है ?

न०—नहीं जी। ट्टल टाईज़ का विज्ञापन है। उसने मुझसे चार आने ज्यादा लिए। देखी उसकी बेईमानी !

ली०—ख़ैर, जाने भी दीजिए। समझ लीजिये, चार आने पैसे उसे दान में दे दिए। [खद्दर के गट्ठर को देखकर] यह गठरी कैसी !

न०—एक स्वयंसेविका खद्दर बेचने आई थी। वह अपना गज़ यहीं कहीं भूल आई। लेने गई है। गट्ठर यहीं छोड़ गई है। कहती थी, रास्ते में व्यर्थ बोझ क्यों ढोऊँ ?

ली०—तो क्या कुछ ख़रीदा आपने ?

न०—नहीं तो, खद्दर मुझे कभी पसन्द नहीं आया।

ली०—आपको तो टाई पसन्द आती है !

न०—[लज्जित होकर] लीला, मुझसे व्यङ्ग न करो। तुम्हारा उपदेश मैं बहुत सुन चुका। अच्छा अब जाता हूँ।

ली०—सुनिये, सुनिये, [नवीन का प्रस्थान] अच्छा, चले गये ! पूछती, मेरी सोने की अँगूठी कहाँ गई। [टेबुल के दराज़ में खोजती है। चन्दन को पुकार कर] चन्दन !

च०—जी हुजूर।

ली०—तुझे मालूम है, मेरी सोने की अँगूठी कहाँ है !

च०—हुजूर, आप कल तो पहने थीं। आपने उतारकर कहीं रख दी होगी।

ली०—उतार कर रख दी, तभी तो हाथ में नहीं है।

च०—आपने बाथ रूम में तो नहीं रखी ?

ली०—[स्मरण करते हुए] शायद वहाँ हो। [प्रस्थान।]

[चन्दन अँगूठी यहाँ-वहाँ खोजता है। सुधा का स्वर बाहर से।] मैं आ सकती हूँ ?

च०—कौन है ?

सु०—अभी खद्दर बेचने आई थी।

च०—[शान से] अच्छा आओ। [सुधा का प्रवेश।]

सु०—[चन्दन को देखकर] तुम्हारे साहब कहाँ हैं। अभी नहीं आए ?

च०—अभी बाहर से नहीं आए। तुम अपना गट्ठर उठा ले जा सकती हो। और देखो जी, इसी तरह क्यों चली आती हो ? तुम अपने नाम का कार्ड रखो। जब यहाँ आओ तो पहले उसको पेश करो। समझी ? मिलने का ढङ्ग ऐसा नहीं कि आए और कमरे में घुस पड़े। साहबों से मिलने का तरीका पहले मुझसे सीखो।

सु०—ठीक है। [खद्दर का गट्ठर उठा कर चलती है।]

च०—और सुनो जी, तुम हाथ में सोने की अँगूठी नहीं पहनती ?

सुधा—सोने की अँगूठी ? पूछने का मतलब ?

च०—यही मैंने कहा, सोने की अँगूठी अच्छी होती है।

सु०—[दृढ़ दृष्टि से] अजीब आदमी है ! [प्रस्थान।]

[चन्दन फिर अँगूठी यहाँ-वहाँ खोजने लगता है। लीला का प्रवेश।]

ली०—बाथ रूम मे भी अँगूठी नहीं हैं। टेबुल के दराज़ में भी नहीं है। कोई यहाँ आया तो नहीं था?

च०—वही खद्दर वेचने वाली आई थी।

ली०—वह क्या ले गई होगी! वह नहीं ले जा सकती। फिर तुम्हारे हुज़ूर भी तो थे।

च०—नहीं हुज़ूर, कोई किसी का दिल क्या जाने, न जाने कब क्या···!

ली०—अभी वे नहीं आए?

च०—नहीं तो हुज़ूर, देखूँ बाहर? शायद आते हों। [बाहर जाता है।]

ली०—[सोचते हुए] कहाँ जा सकती है अँगूठी? न मिलने पर वे नाराज़ ज़रूर होंगे।

[फिर, टेबुल का दराज़ देखती है। न मिलने पर आलमारी का दराज़ खोलती है। खद्दर का थान देखकर विस्मित होती है। निकालती है। सोचते हुए] अच्छा, यह थान कहाँ से आया? वे तो कहते थे कि मैंने कोई कपड़ा खरीदा ही नहीं? फिर यह कहाँ से आया? कहीं उसी ने तो बेचने की गरज़ से यहाँ नहीं रख दिया··? पर वह यहाँ रख कैसे सकती है···? कहीं उन्होंने तो खद्दर के गट्ठर से निकाल कर यहाँ नहीं रख दिया? ओह, वे कैसे होते जा रहे हैं!··· मै उसे बुलाकर वापस कर दूँ···। कहीं वे नाराज़ हो गए तो···! अच्छा यह कैसी आवाज़?

[बाहर चन्दन और सुधा में बातचीत होती है, लीला सुनती है।]

सु०—देखो जी, मेरे गट्ठर में एक थान कम है। कहीं अन्दर ही तो नहीं रह गया ?

च०—[रूखे स्वर से] अन्दर कैसे रह जायगा ? जैसा गट्ठर बाँध कर रख गई थीं, वैसा ही बँधा रखा था, कैसी बात करती हो तुम ?

[लीला खद्दर के थान को दराज़ में बन्द कर दरवाज़े के और पास आकर सुनने लगती है।]

सु०—गट्ठर कुछ हलका जान पड़ा। मैंने खोल कर देखा तो एक थान कम था।

च०—घर पर ही भूल आई होगी ? सुबह खूब कुहरा पड़ रहा था, जानती हो ? कुहरे-अँधेरे में कुछ दिखा न होगा। समझी होगी कि थान रख लिया। यहाँ तो गठरी किसी ने खोली भी नहीं।

सु०—[सोचकर] मुमकिन हो, मैंने ही भूल की हो। [ठहर कर] लेकिन, मैंने तो तुम्हारे हुज़ूर को वह थान दिखलाया था ?

ली०—[पुकार कर] चन्दन ?

च०—[नेपथ्य से] हुज़ूर—

ली०—क्या कोई बाहर है ?

च०—जी हाँ, वही खद्दर बेचनेवाली ! कहती है कि एक थान कम है।

ली०—हाँ, जब वे बाहर जा रहे थे तब मैंने एक थान पसन्द किया था। वह क़ीमत लिये बिना ही चली गई ?

च०—मैं बुलाऊँ ?

ली०—हाँ, बुलाओ। [सोचती है। सुधा का प्रवेश। वह हाथ जोड़कर नमस्ते करती है। उत्तर देकर] बहन, माफ़ करना। तुम तो बिना जतलाये ही चली गईं। मैं भीतर थी। मैंने एक खद्दर का थान ले लिया था। क़ीमत लिये बिना ही तुम चली गईं ?

सु०—मैं समझी, गट्ठर वैसे ही बँधा हुआ रखा है। उठाकर चली गई।

ली०—मेरी अँगूठी खो गई थी, उसे ही खोजने में लगी हुई थी। इसीसे बाहर नहीं आ सकी।

सु०—इसीलिए आपका नौकर मुझसे अँगूठी पहनने को कह रहा था! [चन्दन को तीव्र दृष्टि से देखती है।]

ली०—वह नासमझ है। आप चिन्ता न करें। अच्छा हाँ, क्या क़ीमत है आप के थान की ?

सु०—मैं वह थान ज़रा देखूँ !

[लीला वह थान दराज़ में से निकालकर दिखलाती है। सुधा उसे देखकर—]

सु०—सात रुपये सवा नौ आने।

ली०—[पर्स में से नोट निकालते हुए] यह लीजिये, दस रुपये का नोट। बाक़ी दो रुपये पौने सात आने मुझे दे दीजिये।

सु०—[कृतज्ञता से] धन्यवाद, मेरे पास भी नोट ही है। रुपये नहीं हैं। अभी नोट भुनाकर दे देती हूँ।

[नोट लेकर जाती है। चन्दन उसे घूरता है।]

च०—हुज़ूर, इसी ने ली है आपकी अँगूठी।

ली०—बको मत, चन्दन। अच्छा देखो। [खद्दर का थान खोलते हुए] यह कैसा है चन्दन ?

च०—[उल्लास से] बहुत अच्छा है, हुजूर अगर इसका सूट बनवायें, तो जवाहरलाल से बढ़कर दिखेंगे।

ली०—[हँसकर] अच्छा, जवाहरलाल सूट पहनते हैं ?

च०—हाँ हुजूर। टैम्स में वो तसवीर निकली थी कि जवाहरलाल हवाई जहाज के पास खड़े थे सूट पहन के !

ली०—[हँसकर] पर तेरे हुजूर तो खद्दर पहनते ही नहीं।

च०—जरूर पहनेंगे, हुजूर ! अब आपने लिया है, तो वे जरूर पहनेंगे।

ली०—देखो, [अँगूठी की याद] पर चन्दन, मेरी अँगूठी नहीं मिल रही है। तेरे हुज़ूर सुनेंगे तो नाराज़ होंगे।

च०—[सोचते हुए) जब आप हाथ-मुँह धो रही थीं तब तो नहीं गिर गई ? हुजूर, आपको दिखी न हो। आज सुबह बड़ा कुहरा था हुजूर !

ली०—(प्रस्थान) सब चीज़ के लिए तेरा कुहरा था। अच्छा देखूँ ! [प्रस्थान।]

[चन्दन थोडी देर तक खडा सोचता है। फिर खद्दर के थान को हाथ से छूते हुए) वाह, कैसा बढिया है। हुजूर जब पहनेंगे तो (सोचकर) मेरे मुन्नू की माँ ने मेरे लिए कभी ऐसा कपड़ा नहीं खरीदा (नवीन का प्रवेश। चन्दन सकपका जाता है। खद्दर को देवुल पर देखकर नवीन विस्मय मिले क्रोध से घबड़ाए हुए स्वर में)

न०—क्यो रे यह.. खद्दर का थान कहाँ से आया ? मैंने...कौन यहाँ...लाया ? उसने...मैंने कह दिया था अभी ज़रूरत नहीं, फिर और वह तो गठरी बाँध कर चली गई थी--गई थी ? फिर मैंने—

च०—[घबड़ा कर काँपते हुए] हुजूर, घर के हुजूरने—हुजूर ने...

[सुधा का प्रवेश ।]

सु०—यह लीजिये, दो रुपये पौने सात आने। देर के लिए माफ कीजिये।

न०--[आश्चर्य से] यह—यह कैसे दो रुपये पौने सात आने !

सु०—आपने यह खद्दर का थान ख़रीदा था न ?

न०—मैंने...आँ मैंने...मैंने तो आपसे कह दिया था कि आप फिर आइये, आप फिर...

सु०—हाँ, लेकिन आपकी श्रीमती जी ने इसे ख़रीद ही लिया।

न०—मुझसे विना पूछे ?

सु०— यह आप जाने।

न०— अच्छा ?

सु०—आपकी श्रीमती जी ने दस रुपये का नोट दिया था ! मेरे पास बाक़ी पैसे नहीं थे। मैंने कहा अभी नोट भुनाकर लौटाती हूँ। बाक़ी पैसे लौटाने में कुछ देर हुई हो तो क्षमा करें।

न०— ख़ैर, क्षमा-वमा की ज़रूरत नहीं। पैसे भी उन्हीं को . ऐ...अच्छा टेबुल पर रख दीजिये।

सु०—[टेबुल पर पैसे रखते हुए] आपको यह कपड़ा ख़ूब जँचेगा। मैं आप ही के लिए तो लाई थी। और हाँ, एक मज़ेदार

बात सुनिये। जब मैं लौटकर अपना गट्ठर ले जा रही थी, तो मुझे यह गट्ठर कुछ हलका मालूम हुआ। मैंने समझा, मैं एक थान आपके यहाँ ही भूली जा रही हूँ। मैं इस विषय में आपके नौकर से बात ही कर रही थी कि आपकी श्रीमतीजी ने बुलाकर उस थान के लिए दस रुपये का नोट दिया।

न०—[विह्वल होकर] अच्छा, क्या उन्होंने थान पसन्द......?

सु०—हाँ, पसन्द ही किया होगा, जब मैं अपना गज़ लाने के लिए वापस गई थी, इसी बीच मे उन्होंने खद्दर की गठरी खोलकर शायद सब कपडे देखे थे और यही थान पसन्द किया था।

न०—[सोचता है।] हूँ।

सु०—उसी समय उन बेचारी की अँगूठी खो गई। वे भीतर अपनी अँगूठी खोज रही थीं और मैं बिना उनसे मिले अपना गट्ठर लेकर बाहर चली आई। मुझे क्या पता कि मेरे सूने में ही मेरे सामान की बिक्री हो रही है। सचमुच ईश्वर बड़ा दयालु है!

न०—[सोचता है।] हूँ।

सु०—[प्रसन्नता और हर्षातिरेक मे] और उनकी उदारता तो देखिये कि जब मैं बाहर चली आई, तो मुझे बुलवाकर उन्होंने बिना एक पैसा कम किये मुझे सारी क़ीमत दे दी।

न०—[श्रान्त होकर] अच्छी बात है। मैं ज़रा थक गया हूँ। आराम चाहता हूँ। फिर कभी दर्शन दीजिये।

सु०—अच्छी बात है। वन्देमातरम् [प्रस्थान।]

[नवीन कुर्सी पर बेबसी से गिर पड़ता हुआ-सा बैठता है।]

च०—[विचलित होकर] हुजूर, क्या सिर में दर्द है ? बुलाऊँ उनको, हुजूर—

न०—[सँभल कर] नहीं, रहने दो। यों ही ज़रा सिर में चक्कर-सा आ गया था।

च०—[शीघ्रता से] तो हुजूर मैं बुलाता हूँ उन्हें।

[चन्दन का 'हूजूर' 'हूजूर' कहते हुए प्रस्थान।]

[नवीन सोचता है] ओह...सम्मान की इतनी अधिक रक्षा ! इस ढङ्ग से...! फेथफुल वाइफ . स्वीट लीला...और मैं !

[लीला का चन्दन के साथ प्रवेश।]

च०—[लीला से] देखिये हुजूर !

[लीला आकर एक दम से नवीन के सिर पर हाथ रखती है, वह घबड़ाई हुई है।]

लीला—[विह्वल होकर] क्यों, क्या हुआ ? क्या चक्कर आ गया ? चन्दन, ज़रा पानी लाना।

चन्दन—बहुत अच्छा, हुजूर [दौड़ते हुए प्रस्थान।]

ली०—क्यों, तबीयत आपकी कैसी है ?

न०—नहीं, यों ही कुछ भारीपन मालूम हो रहा था। तुम्हारी अँगूठी लेकर गया था नाप देने लिए। तुम्हारे लिए वैसी ही दूसरी बनवाना चाहता था। इश्योरेंस के कुछ रुपये आए थे।

ली०—[चिंतित होकर] मुझे अँगूठी की ज़रूरत नहीं है। आपको चक्कर तो नहीं आ रहा इस समय ? [चन्दन पानी लेकर आता है।] लीजिये पानी, मुँह धो डालिये।

न०—[जैसे कुछ सोचते हुए] लीला !

ली०—कहिए।

न०—लीला, मैं दुनिया बहुत बुरी समझता था, लेकिन—

ली०—[चन्दन से] चन्दन, तुम बाहर जाओ।

[चन्दन का सोचते हुए धीरे धीरे प्रस्थान।]

न०—लीला, सोशलिज़्म के विचार रखते हुए भी एक आदमी सच्चाई के साथ रह सकता है।

ली०—हाँ।

न०—वह लोगों के साथ ठीक बर्ताव रख सकता है। धनवानों से लड़ सकता है लेकिन सच्चाई के साथ, प्रेम के साथ। वह बुक-सेलर की किताबें नहीं उड़ा सकता और खद्दर का थान......

ली०—जाने दीजिए।

न०—लेकिन लीला, मेरे स्वभाव ही में ऐसी बात हो गई थी। मैं देखता हूँ कि लड़कपन की पड़ी हुई आदत बड़े होने पर भी नहीं जाती !

ली०—आप सब बातें समझते हैं। आप से क्या कहना !

न०—लीला, तुम सचमुच देवी हो !

ली०—[लज्जित होकर] क्या कहते हैं आप !...अच्छा यह बतलाइए कि आपकी तबीयत अब कैसी है ?

न०—[स्वस्थ होकर] नहीं अब अच्छा हूँ। यों ही कुछ......

ली०—तो कपड़े वगैरह उतार डालिये। कुछ हलकापन हो।

कालर-टाई की वजह से तो और भी बेचैनी मालूम होती होगी। इसे उतार डालिये।

न०—[आवेश में] हाँ, इसे उतार डालता हूँ। [उतार कर चन्दन को पुकारते हैं] चन्दन [चन्दन का प्रवेश।] जाओ। इस टाई को ठीक कर मदनलाल खन्ना के यहाँ दे आओ और कहो कि कल मेरे साथ यह भूल से चली आई थी।

च०—हुज़ूर, अभी आप—

ली०—[आश्चर्य से] अरे...!

न०—[दृढ़ता से] अभी आप कुछ नहीं, इसी समय लेकर जाओ!

[चन्दन रेशमी टाई लेकर सिर झुकाए जाता है।]

न०—हाँ, जरा पानी लाओ, मुँह की कालिमा धो लूँ।

[पानी के गिलास की ओर हाथ बढ़ाता है। लीला विस्मय और प्रसन्नता से नवीन की ओर देखती रह जाती है।]

[परदा गिरता है।]